।।ओ३म्।।

नवयुग की आहट

महर्षि दयानन्द सरस्वती

ओ३म्

नवयुग की आहट

महर्षि दयानन्द सरस्वती



लेखक :

राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

प्रकाशक :



परोपकारिणी सभा

केसरगंज, अजमेर (राजस्थान)

अन्तर्राष्ट्रीय विश्व पुस्तक मेला २०१६
प्रगति मैदान, नई दिल्ली
के अवसर पर जनहित में सप्रेम भेंट

सौजन्य : शिव कुमार चौधरी
''वेदश्रुति'', ८०-ए, मनीषपुरी, इन्दौर-४५२०१८
सम्पर्क : ०९८२६०५६३६१, ईमेल : skc@pratibhasyntex.com

प्रकाशक : **परोपकारिणी सभा**
दयानन्द आश्रम, केसरगञ्ज,
अजमेर—३०५००१, दूरभाष : ०१४५-२४६०१६४

वैब-साइट : www.propkarinisabha.com

ई-मेल : psabha@gmail.com

सम्पर्क : १. **वैदिक पुस्तकालय**, केसरगंज, अजमेर
दूरभाष : ०१४५-२४६०१२०
२. **ऋषि उद्यान**, पुष्कर रोड, अजमेर
दूरभाष : ०१४५-२६२१२७०

संस्करण : प्रथम आवृत्ति
सृष्टिसंवत् १९६०८५३११६
दयानन्द जन्माब्द १९१
विक्रमी सम्वत् २०७२
ईस्वी सन् २०१६

टाइप-सैटिंग : स्वस्ति कम्प्यूटर्स, करनाल (हरियाणा)
चलभाष : ०९२५५९-१२३१४

मुद्रक : राधा प्रेस, कैलाशनगर, दिल्ली-११० ०३१



स्वामी दयानन्द 'महर्षि' क्यों कहलाए?

क्योंकि स्वामी दयानन्द एक योगी, वेद के मन्त्रद्रष्टा एवं १९वीं शताब्दी में वेद के अद्वितीय व एकमेव भाष्यकार हुए हैं। आप ही ने भारत के जनमानस तथा मत-पंथों को सिखाया कि बुद्धि से लाभ कैसे उठाया जाता है। वह भी उस समय जब तर्क करना वर्जित था। आप आधुनिक विश्व इतिहास के सबसे बड़े एकेश्वरवादी थे। आपने भक्त व भगवान् के बीच में बाधक व्यक्तिपूजा की सब दीवारें ढा दीं।

ब्रिटिश साम्राज्य का सूर्य जब पूरी तरह से चमक रहा था तब स्वामी दयानन्द अकेले ऐसे व्यक्ति थे जिसने लुटी-पिटी जनता के मन-मस्तिष्क में यह बीज बोया कि विदेशी राज से तो अपना निकम्मा राज भी अच्छा होता है अर्थात् स्वराज्य व सुराज्य का बीज-वपन किया।

बहुविवाह, बालविवाह, अन्धविश्वास, अस्पृश्यता, जातिप्रथा, धार्मिक पाखण्ड जैसी बुराइयों को जड़ से उखाड़ने का प्रथम व सफल प्रयास स्वामी दयानन्द ने ही किया था।

स्वामी दयानन्द १९वीं शताब्दी के अकेले ऐसे महापुरुष थे जिन्होंने २९००० हज़ार पृष्ठों का साहित्य सृजन किया।

प्रकाशकीय

परोपकारिणी सभा ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी सभा है। एक उत्तराधिकारी का सहज कर्त्तव्य है कि वह अपने गौरव पूर्ण अतीत की रक्षा और वृद्धि करे। बहुत प्रारम्भ में अंग्रेजी के सिद्धहस्त लेखक और इतिहासकार हरविलास शारदा ने 'लाइफ ऑफ स्वामी दयानन्द' के नाम से एक प्रामाणिक जीवनी का लेखन कार्य किया था। यह प्रसन्नता की बात है कि यह जीवनी बहुत दिनों से अप्राप्त थी परन्तु इन्दौर निवासी श्री शिवकुमार चौधरी के सहयोग से सभा ने उसको पुनः उपलब्ध कराया है। पुनः आर्य विद्वान् श्री रामविलास जी ने आर्य धर्मेन्द्र का जीवन लिखा, जिसे सभा ने पुनः प्रकाशित कर जनता को सुलभ कराया।

विश्व पुस्तक मेले में सत्यार्थप्रकाश के साथ-साथ पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखित महर्षि दयानन्द की जीवनी गत अनेक वर्षों से सभा द्वारा प्रकाशित करके पुस्तक मेले में आने वाले सज्जनों को हजारों की संख्या में वितरित की जाती रही है।

यह एक सुखद संयोग है कि आर्य जगत् के मूर्धन्य विद्वान् ऋषि के प्रति अनन्य निष्ठा रखने वाले प्रा० राजेन्द्र जी जिज्ञासु ने सामान्य जन को ध्यान में रखकर इस ऋषि जीवन का प्रणयन किया है। अपनी खोजपूर्ण सामग्री से आपने पं० लक्ष्मण आर्योपदेशक रचित विशालकाय उर्दू जीवन का हिन्दी अनुवाद करके आर्य जनता को सुलभ कराया है। यह जीवन-चरित केवल अनुवाद नहीं है, एक प्रकार से पुनर्लेखन है। इसमें ऋषि जीवन के सम्बन्ध में प्राप्त समस्त नवीन सामग्री का समावेश किया गया है। साथ ही सामग्री को यथावत मूल रूप में प्रस्तुत कर ग्रन्थ की प्रामाणिकता में वृद्धि कर दी है। जो भी प्रमाण दिये गये हैं, उनके स्रोत उद्धृत हुए हैं। इस प्रकार ऋषि दयानन्द के जीवन का अध्ययन मनन करने वालों के लिये ऋषि जीवन के स्वाध्याय का नया आस्वाद अनुभव करने का अवसर प्रदान किया है।

ऐसे विद्वान् द्वारा संक्षिप्त ऋषि जीवन प्रस्तुत करना, सामान्य जनता के लिए एक अमूल्य उपहार है। इस पुस्तक की विशेषता के सम्बन्ध में जिज्ञासु जी ने लिखा है—

इस ऋषि जीवन के लघु संस्करण में ऋषि जीवन का विवरण तो है ही, साथ ही प्रसिद्ध इतिहासकारों द्वारा ऋषि का किया गया मूल्यांकन भी इसमें उद्धृत है। साथ ऋषि के घोर विरोधियों ने भी ऋषि के जिन गुणों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है, उसका इस ग्रन्थ में सप्रमाण उल्लेख किया गया है। विरोधियों के आक्षेपों का भी सयुक्तिक समाधान इस छोटी पुस्तिका में देखने को मिलेगा। ऋषि के व्याख्यान और लेखन ने विरोधियों को अपने अवैज्ञानिक लेख व सिद्धान्तों को ठीक करने के लिए किस प्रकार अपने धर्म ग्रन्थों के पाठ बदलने पड़े, इसका भी उदाहरण आपको पुस्तिका में पढ़ने को मिलेगा।

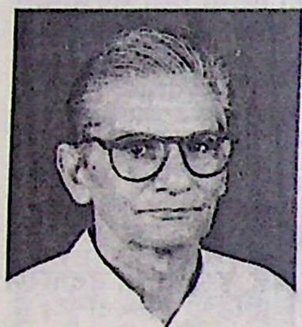
इस प्रकार ऋषि दयानन्द का नया लघु जीवन एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति करेगा।

अभी तक लिखे जीवन-चरितों के लेखन के पश्चात् भी जो नई सामग्री प्राप्त हुई है। उस सामग्री का इस ग्रन्थ में समावेश होने से यह अद्यतन जीवन चरित पाठकों की ऋषि सम्बन्धी जिज्ञासाओं को शान्त करने में सफल होगा। सभा और लेखक का प्रयास इस बलिदान पर्व पर विनम्र श्रद्धाञ्जलि स्वरूप जनता को सादर समर्पित है।

—धर्मवीर आर्य

प्राक्कथन

तृष्णा! तू न गई मेरे मन से



आज छह मार्च का दिन है। वीर शिरोमणि रक्तसाक्षी पण्डित लेखराम जी का बलिदान दिवस होने के कारण मेरे लिए ही नहीं आर्य मात्र के लिए अतीत अवलोकन तथा आत्म-निरीक्षण का दिवस है। मैं इन दिनों 'नवयुग की आहट—**महर्षि दयानन्द सरस्वती**' अपनी नई पुस्तक लिखने में व्यस्त रहा। लेखन कार्य आरम्भ करते ही सोच लिया था कि छह मार्च को—इस पावन पर्व पर इसका प्राक्कथन लिखूँगा। मन में भावों की बाढ़-सी आई हुई है। मैं एक साथ कई परियोजनाएँ पूरी करने में लगा हुआ था कि अकस्मात् करनाल से श्री महेन्द्रसिंह जी आर्य कम्प्यूटरकार ने चलभाष पर माननीय श्री वेदपाल जी वानप्रस्थी पानीपत से बात करके इस नई पुस्तक को लिखने की प्रबल प्रेरणा दी।

मैं कई बार यह लिख चुका हूँ कि अब मुझे कोई प्रेमी नया कार्य न सौंपे। श्रीयुत अनिल आर्य, श्रीमान् रमेश जी मल्होत्रा, श्री महेन्द्रसिंह तथा श्री जितेन्द्रकुमार जी गुप्त बठिण्डा जो चाहेंगे—मैं वही करता जाऊँगा। श्री महेन्द्रसिंह जी को उत्तर दिया कि जिस कार्य में लगा हूँ, उसे पूरा करके आप द्वारा सौंपा कार्य पूरा करने में लगूँगा। आप का आग्रह था कि नहीं, इसे प्राथमिकता देकर अभी पूरा कीजिए। "अच्छा! आपकी इच्छा मेरे लिए आदेश है, इसे मैं नहीं टाल सकता।" आपने बात-बात में श्री रमेश जी का इस कार्य हेतु अनुरोध जोड़ दिया सो तत्काल यह कार्य हाथ में ले लिया। आप दोनों परोपकारिणी सभा के अथक व निष्काम सहयोगी सेवक हैं। आप द़ोनों के सुझाव पर सभा ने इस पुस्तक के प्रकाशन का निर्णय ले लिया। रमेश जी की योजना इसके व्यापक प्रसार की है। आर्य

जन व समाजें सोत्साह सभा को सहयोग करने के लिए आगे आयें।

महर्षि दयानन्द जी के अनेक जीवन-चरित्र बाज़ार में उपलब्ध हैं। मेरे द्वारा सम्पादित व अनूदित आज तक का सबसे बड़ा जीवन-चरित **'महर्षि दयानन्द सरस्वती—सम्पूर्ण जीवन चरित्र'** भी इनमें से एक है। फिर इस नए जीवन चरित्र की क्या विशेषता व आवश्यकता है ? मैंने इस पर इतना श्रम क्यों किया ? मेरा संक्षिप्त उत्तर है कि पाठक इसे पढ़कर अपने हृदय से इस प्रश्न का उत्तर पूछें। उनका हृदय साक्षी देगा कि इस छोटी पुस्तक में ऐसी पर्याप्त सामग्री सप्रमाण दी गई है जो अब तक के छपे किसी जीवन चरित्र में नहीं मिलेगी। इस जीवनी में कालक्रम का भी ध्यान रखा गया है, परन्तु सन् संवत् व तिथियों की भरमार से पुस्तक को सूखी हड्डियों का ढाँचा नहीं बनाया गया।

पुस्तक में प्रेरक प्रसंग हैं। ऋषि जीवन की प्रत्येक घटना पूर्वापर सम्बन्ध की दृष्टि से रोचक शैली में लिखने का प्रयास किया गया है। कविराजा श्यामलदास, आचार्य चमूपति, कविरत्न प्रकाश जी, भक्तराज अमींचन्द जी, पं० हरिशंकर शर्मा जी के भावपूर्ण सुललित पद्य पाठकों की उत्सुकता, जिज्ञासा व श्रद्धा को गुदगुदाते हैं। इतिहासकार यदुनाथ, श्री काशीप्रसाद जयसवाल, डॉ० ईश्वरीप्रसाद, पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय के विचारोत्तेजक अवतरणों व वचनों को पढ़कर पाठकों का मन मोर भावविभोर होकर नाच उठता है। ऋषि के निन्दक, आलोचक व विरोधी उनके पावन चरित्र, उनके सद्गुणों, उनकी उपलब्धियों तथा तपस्या पर मुग्ध होकर क्या कहते हैं, ये पढ़कर भक्त हृदय पुकार उठता है—

क्या क्या हमें भी अपने नसीबों पै नाज़ है!
पाया है हमने तेरा ज़माने प्यम्बरी॥

—'महरूम'

ऋषि पर वार प्रहार किये गये। तलवार, कटार उन्हें न डरा सकी। ईंट पत्थर बरसाये गये। टांग तक तोड़ी गई। विषपान कई बार किया। **ऋषि न बोला, न डोला। तन तान कर आगे बढ़ता गया।** ये प्रसंग पढ़कर पं० चमूपति की तान कानों में गूञ्ज उठती है—

न तलवार चलती है, तुझ पै न भाला।
दयानन्द स्वामी! तिरा बोल बाला॥

ऋषि जीवन पर जो प्रश्न उठाए जाते हैं, जो शंकाएँ की जाती हैं और विरोधी जो आक्षेप करते रहे हैं, उनके उत्तर व समाधान भी स्वत: ही इसमें मिलते जाएँगे। इस पुस्तक को हमने महर्षि के व्यक्तित्व के अनुरूप ही मनन, चिन्तन, मन्थन करके भक्तिभाव से भावपूर्ण शैली में लिखा है। **ऋषि को ऋषि, महर्षि जानकर, मानकर लिखा है। हमने ऋषिवर को अपना छोटा भाई, सांसद, पत्रकार व एक राजनेता समझकर 'दयानन्द', 'दयानन्द' लिखकर ऋषि का अवमूल्यन नहीं किया।** पुस्तक की प्रत्येक पंक्ति में पाठक इस लेखक के मन व मस्तिष्क को पिरोया हुआ पाएँगे। लेखक के प्रेरणा-स्रोत हैं—पं० गुरुदत्त विद्यार्थी, महाराणा सज्जनसिंह, पं० लेखराम, स्वामी वेदानन्द, स्वामी दर्शनानन्द, पं० चमूपति, स्वामी स्वतन्त्रानन्द तथा पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय आदि महापुरुष।

बाल्यकाल में मेरे ग्रामीण अल्पशिक्षित पिता श्री जीवनमल जी ने पूज्य लक्ष्मण जी लिखित 'ऋषि जीवन कथा' पढ़ने की प्रेरणा देकर ऋषि भक्ति के रंग में रंग दिया। पं० त्रिलोकचन्द्र जी शास्त्री ने पं० लेखराम जी व पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय की लोरियाँ दे दे कर पं० लेखराम जी की लेखनी मेरे हाथ में थमा दी। पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय व पत्रकार शिरोमणि महाशय कृष्ण जी मेरे प्रेरणास्रोत व आदर्श बन गये। सन् १९५५ में ऋषि बोध पर्व के दिनों में दीनानगर में अपनी कुटिया के बरामदे में लेटे हुए महामुनि स्वतन्त्रानन्द जी ने मुझे ऋषि-जीवन के अनुसन्धान की प्रेरणा दी। आशीर्वाद देकर मालामाल कर दिया। महाबलिदानी स्वामी **स्वतन्त्रानन्द जी से ऋषि-जीवन के अनुसन्धान की दीक्षा लेकर उन्हीं के आशीर्वाद की सम्पदा पाकर यह सेवक आगे ही आगे बढ़ता चला जा रहा है।** पीछे मुड़कर फिर देखा ही नहीं। मुझे इतिहासकारों की पंक्ति में खड़ा होने के योग्य बना दिया। मेरा रोम-रोम परोपकारिणी सभा के उस महान् निर्माता का ऋणी है।

मैं भावभरित हृदय से अपने सब पूर्वजों का ऋणी हूँ। कृतज्ञ हृदय से उनका स्मरण करता हुआ बार-बार नमन करता हूँ। बहुत कुछ लिखा है। अब भी बहुत कुछ लिखने के अरमान मेरे उर में मचल रहे हैं। काया और माया का तो मोह है नहीं, परन्तु—

तृष्णा! तू न गई मेरे मन से

लिखने की चाह व उत्साह यथापूर्व है। प्रभु से प्रार्थी हूँ—

मेरे नयनों में दो दृष्टि
भला सृष्टि का हो जाये

यही गुनगुनाता रहता हूँ—

जीवन के अन्तिम श्वास तक यह लेखनी चलती रहे।

मैंने एक-एक पंक्ति को सोच विचार कर, समय देकर लिखा है। पुस्तक का नामकरण करते हुए श्रीमती जिज्ञासु तथा अपनी नातिन मनस्विनी से विचार विमर्श कर मनस्विनी का दिया नाम **'नवयुग की आहट—महर्षि दयानन्द'** हमने पारित कर दिया। रमेश जी तथा महेन्द्र जी को धन्यवाद देना तो अब लोकाचार ही समझा जाएगा।

..... दुर्बलताओं का बोझा ढोता हुए लेखक ने भावुकता से, कुपात्रों पर अति विश्वास करके तथा अति उत्साह के कारण सामाजिक जीवन में कई अक्षम्य भूलें कीं। इनका फल तो भोगना ही पड़ेगा व भोग भी रहा हूँ, परन्तु इस बात का लेखक को परम सन्तोष है कि साहित्यिक क्षेत्र में जितना सोचा करता था उससे कहीं अधिक कार्य कर पाया। इसका श्रेय प्रेमी पाठकों को भी जाता है।

अब तक लेखक ने सभा संस्थाओं, अपने बड़ों के आदेश पर जी भर कर लिखा है। प्रकाशकों व संस्थाओं ने, मित्रों ने लेखक की अनेक पुस्तकें प्रकाशित की हैं। स्वयं स्फूर्ति से पं० लेखराम जी के पगचिह्नों पर चलते हुए जोखिम उठाकर बड़े-बड़े ग्रन्थ व छोटी-बड़ी अनेक पुस्तकें प्रकाशित करने का भी एक इतिहास रच डाला। अब निश्चय किया है कि अपवाद रूप में ही आप कुछ प्रकाशित करूँगा। प्रिय श्री अनिल

आर्य जो लिखने को कहेंगे सो लिखूँगा। ऋषि मिशन के लिए लिखूँगा, अपने पेट के लिए और पेट से पूछकर न कभी पहले ही कुछ लिखा है और न ही आगे यह सोचकर कुछ करूँगा।

परोपकारिणी सभा के प्रति किन शब्दों में आभार प्रकट करूँ जो मुझे इस सेवा का अवसर देकर मुझपर भारी उपकार किया है। यदि सभा इसको बार-बार प्रकाशित न कर पाये तो श्री अनिल आर्य इसके प्रकाशन की व्यवस्था करेंगे।

सभा की अगली ऐतिहासिक महत्त्व की परियोजना—आर्य जनता तक यह समाचार पहुँचाते हुए हर्ष हो रहा है कि हमारे उत्साही आर्य वीर श्री राहुल ने विश्व के कई देशों से महर्षि के जीवन काल के कई दस्तावेज (Documents) खोज निकाले हैं। पं० लेखराम जी के पश्चात् पहली बार ऋषि जीवन सम्बन्धी इतने नये दस्तावेज़ सभा के हाथ लगे हैं। इस सामग्री का उपयोग करके एक अत्युत्तम ग्रन्थ के सृजन का कार्य कुछ ही दिनों में आरम्भ हो जायेगा। **आर्य सामाजिक साहित्य के इतिहास में यह एक अभूतपूर्व ग्रन्थ माना जायेगा।** कई भाषाओं में इसका प्रकाशन होगा। ऋषि भक्तों के लिए दान दाताओं के लिए कर्त्तव्यपालन करने व यश लूटने का यह एक स्वर्ण अवसर है।

'नवयुग की आहट' इस पुस्तक का लेखक एक अल्पज्ञ जीव है। पुस्तक कितनी भी अच्छी क्यों न हो मेरी अल्पज्ञता के कारण इसमें गुणीजन कुछ दोष अवश्य पाएँगे। कृपालु पाठक सुझाएँगे तो दोष दूर करके अवश्य सुधार कर दिया जाएगा। आर्य जगत् इसके प्रसार में परोपकारिणी सभा को सहयोग करेगा, इस आशा के साथ—

आर्यजाति का विनम्र सेवक
राजेन्द्र 'जिज्ञासु'
वेद-सदन, गली नं० ६, नई सूरज नगरी
अबोहर-१५२११६ (पंजाब)

६ मार्च, २०१५
चैत्र कृ० १, २०७१

इस जीवन चरित्र की विशेषताएँ

१. यह जीवन-चरित्र गागर में सागर है। इसमें बीज रूप में सबकुछ है।

२. इस पुस्तक की लेखन शैली में गौरव गिरी पं० लेखराम से लेकर पं० नरेन्द्र जी हैदराबाद तक जाने माने जीवनी लेखकों की शैली की रंगत मिलेगी। लेखक ने अपने पाठकों को कहीं पं० लेखराम जी के विचारोत्तेजक चिन्तन का रसास्वादन करवाया है तो कहीं पं०गुरुदत्त, देवेन्द्र बाबू, स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी दर्शनानन्द, पं० चमूपति, महाकवि श्यामलदास, दीवान हरबिलास, स्वामी वेदानन्द, मेहता जैमिनि, पं० गंगाप्रससाद उपाध्याय, पं० भगवद्दत्त, आचार्य उदयवीर, पं० युधिष्ठिर मीमांसक तथा कविरत्न प्रकाश के हृदय से छलकती श्रद्धा से पाठकों को तृप्त किया है।

३. इसमें जहाँ इतिहास का गहन चिन्तन व गम्भीर खोज मिलेगी, वहीं विश्वप्रसिद्ध इतिहासकारों तथा ऋषि के घोर विरोधियों के उद्धरण देकर महर्षि के कृतित्व तथा व्यक्तित्व का यथार्थ मूल्यांकन किया गया है।

४. यत्र तत्र कवियों के हृदयस्पर्शी सरस पद्य देकर पुस्तक को ऐसा रोचक बनाया है कि पाठक का मन इसे आदि से अन्त तक पढ़े बिना नहीं छोड़ सकता।

५. ऋषि ने अपने मृदुल व्यवहार से पं० श्रद्धाराम जी, पं० श्रीगोपाल मेरठ आदि के हृदय जीत लिये। यह पठनीय सामग्री इसकी एक विशेषता है।

६. महर्षि पर ईर्ष्या, द्वेष से जो कुछ लिखा गया उसका भी यथा स्थान सप्रमाण उत्तर इसमें मिलेगा।

७. बड़े-बड़े विरोधियों से मत पन्थों से नित्य अनादि वैदिक सिद्धान्तों की सच्चाई मनवाकर दिखाई, इसका भी आप दिग्दर्शन करेंगे।

८. आर्यसमाज की स्थापना से बहुत पहले सागर पार पूरे विश्व में महर्षि

की दिग्विजय का डंका बजने लगा—यह ठोस ज्ञान भी करवाया गया है। यह एक अभूतपूर्व खोज है।

९. **आधुनिक युग में बलिदान देकर बलिदान की अखण्ड परम्परा चलाने वाले महात्मा ऋषि दयानन्द हैं, कोई और नहीं।**

१०. ऋषि के मौलिक चिन्तन व समीक्षा से मत पंथों के ग्रन्थों के भाष्य बदल गये, व्याख्यायें बदल गईं और पाठ तक बदल गये। इसके प्रमाण इसमें मिलेंगे। यह आनन्ददायक समाचार कौन झुठला सकता है?

११. पुस्तक के मुद्रण से ठीक पहले सागर पर के देशों से हमें ऋषि जीवन विषयक पर्याप्त नये दस्तावेज़ प्राप्त हुए उनका भी लाभ कुछ तो इसमें उठाया गया है।

१३. प्रथम भारतीय विचारक, सुधारक जिसका चित्र अमरीका के किसी पत्र में छपा, वह ऋषि दयानन्द जी थे। यह चित्र पहली बार इस जीवन चरित्र में छप रहा है।

ऋषि दयानन्द के दार्शनिक दृष्टिकोण की अमिट छाप

सुप्रसिद्ध गांधीवादी विचारक, साहित्यकार तथा भक्त कवि आदरणीय वियोगी हरि द्वारा सम्पादित एक सुन्दर ग्रन्थ 'हमारी परम्परा' में 'आर्यसमाज' पर भी एक पठनीय लेख दिया गया है। इसके लेखक स्वर्गीय श्री विष्णु प्रभाकर जी है। इस लेख में आपने यह ठीक ही लिखा है—"जो भी हो, उनके इस आन्दोलन के कारण पतनशील हिन्दू जाति में आत्मसम्मान पैदा हुआ। उसने अपनी परम्परा को सच्चे रूप में देखा। इन्हीं सब बातों का प्रचार करने के लिए स्वामी जी ने आर्यसमाज की स्थापना की।"[१]

इसी लेख में आगे चलकर श्री विष्णु प्रभाकर जी लिखते हैं—"दर्शन के क्षेत्र में आर्यसमाज का योगदान इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है। जितना सुधार के क्षेत्र में। उसने अन्धविश्वासों पर गहरी चोट की।"[२]

लेखक का यह कथन आंशिक सत्य है। यह पूर्ण सत्य नहीं है। इसमें दोष लेखक का इतना नहीं जितना आर्यसमाज के तथाकथित पदाधिकारी वर्ग, वक्ताओं व लेखकों का है। इन लोगों के भाषणों व लेखों का मुख्य विषय ही 'समाज सुधारक स्वामी दयानन्द' रहता है। महर्षि दयानन्द के वैदिक दर्शन की मौलिकता व महत्ता तथा उसके व्यापक प्रभाव पर आर्यसमाज में कुछ विरले विद्वान् ही कुछ लिखते व बोलते हैं। सत्य तो यह है कि जैसे भूमि के गुरुत्व आकर्षण (Law of Gravitation) का सिद्धान्त हमारी सब गतिविधियों में ओतप्रोत रहता है, परन्तु वह हमें दिखाई नहीं देता। ठीक इसी प्रकार स्वामी दयानन्द जी के वैदिक दर्शन ने विश्व के सब मत-पंथों को प्रभावित किया है, परन्तु इस प्रभाव को हम देख नहीं पा रहे। स्वामी जी की विश्वव्यापी दिग्विजय को न समझना हमारी अक्षम्य भूल है। उनके दर्शन के व्यापक प्रभाव को

१-२. द्रष्टव्य, हमारी परम्परा, लेखक श्री वियोगी हरि, पृ० ५२७, ५३१

अनुभव न करने में दोष स्वामी दयानन्द का नहीं। इसके लिए दोषी इतिहासकार व साहित्यकार हैं।

सत्यार्थप्रकाश में महर्षि दयानन्द जी ने मत पन्थों की समीक्षा करते हुए जो-जो प्रश्न उठाये उन सबका इन मतों पर भी गहरा व अमिट प्रभाव पड़ा है। श्री अनवरशेख की किसी भी पुस्तक को उठा लें, आप उनके चिन्तन पर ऋषि के वैदिक दर्शन का प्रभाव देखेंगे। डॉ० गुलाम जेलानी खुलकर वैदिक दर्शन की मूलभूत बातों को स्वीकार करते हैं। **चाँद के दो टुकड़े (मोजिज़ा शक-उलकमर) में आज कौन विश्वास करता है ? 'कुन' कहा और सृष्टि रची गई**—ऐसे ढोल अब कौन पीटता है। उपादान कारण के बिना कुछ भी नहीं बनता। यह सबको मान्य है। डॉ० इकबाल प्रातः के पश्चात् रात और रात के पश्चात् प्रभात का उदाहरण देकर जीवन के पश्चात् मृत्यु के चक्कर को मानते हैं।

दोज़ख़ बहिश्त के बिना इस्लाम की चर्चा करना असम्भव-सा था। अब ग़ालिब की आड़ में खुलकर कहने लगे हैं—

'दोज़ख़ में डाल दो कोई लेकर बहिश्त को'

अनवर शेख़ जी के 'यज़दान और शैतान' को पढ़कर देखिये। इसमें उठाये गये प्रश्न किसके हैं ? फ़रिशतों की परिभाषा बदल गई। **'वैदिक धर्म और इस्लाम'** पढ़कर जाँच की जा सकती है। मौलाना महबूब अली प्रकृति व जीव को अनादि माने बिना कुरान वर्णित अल्लाह के सब नाम निरर्थक मानते हैं। अल्लाह जब अनादि काल से दयालु, न्यायकारी व पालक मालिक है तो दया व न्याय पाने वाली प्रजा भी तो अनादि होनी चाहिए। अनादि जीवों व अनादि प्रकृति के बिना ईश्वर के इन गुणों का प्रकाश कैसे ?

ईसाई भाई भी केवल ईश्वर की अनादि सत्ता को ही मानते थे। प्रकृति व जीव उसी ने बनाये। अब उनको महर्षि की समीक्षा ने यह आयत समझा दी—

"and the Spirit of God was hovering over the waters."[1]

अर्थात् परमात्मा का आत्मा जलों पर डोलता था। अब जल रूपी प्रकृति

१. द्रष्टव्य, *Holy Bible U.S.A. Qenesis 1*

(Matter) का अनादित्व इन्हें भी सूझ गया। बाइबल की पहली आयत ही बदल कर ऐसे हो गई—"In the beginnig God created the heavens and the earth."[2] Heaven (आकाश) का बहुवचन कैसे हो गया? फिर आगे भी पाठ बदलते गये, "Then God said, Let us make human beings in our image."[3] अर्थात् परमात्मा ने कहा हम मनुष्यों को अपनी आकृति पर बनावें। यहाँ Human beings बहुवचन कैसे हो गया? **यह ऋषि दयानन्द के दर्शन की छाप है कि अमैथुनी सृष्टि में अनेक युवा स्त्री पुरुष उत्पन्न किये गये।** ईसाइयों की समझ में यह समीक्षा भी आ गई। उत्पन्न होते ही मनुष्यों को कह दिया—"You are free to eat from any tree in the garden."[4] युवा थे तभी तो फल आदि खाते थे। युवा थे तभी तो उद्यान में भ्रमणार्थ विचर रहे थे। यह सब ऋषि के दर्शन की छाप है जो बाइबल के पाठ ही बदल गये। भाव बदलने की प्रक्रिया तो तभी आरम्भ हो गई थी।

जिन सम्प्रदायों के लोग अब तक ईश्वर को आकाशस्थ (Heavenly Father) कहकर पुकारते व मानते थे, वे अब उसे Omnipresent सर्वव्यापक व हाज़िर नाज़िर कहकर जनता में अपनी छवि सुधार रहे हैं। न तो चौथा आसमान कहीं पता चला और न सातवाँ। यह है स्वामी दयानन्द के दर्शन का जादू।

हिन्दू समाज भले ही मूर्तिपूजा, जातिवाद, अनेकश्वरवाद से अब भी चिपका हुआ है, परन्तु अब कौन मानता है कि ब्राह्मण भगवान् के मुख से जन्मा और शूद्र पैर से पैदा हुए। **मोगा (पंजाब) में एक आधुनिक मन्दिर में पूंछ रहित हनुमान जिसका जी चाहे देख ले।**

पं० गिरधर शर्मा जी चतुर्वेदी ने खुलकर आचार्य उदयवीर जी की भूरि-भूरि प्रशंसा की कि आपके सांख्यदर्शन के भाष्य से इस दर्शन पर तथा **कपिल ऋषि पर लगा नास्तिकता के कलंक का टीका धुल गया।** सांख्यदर्शन वैदिक दर्शन है। आस्तिक दर्शन है। दर्शनों में मतैक्य है, यह सनातनी भी मानने लगे हैं। यह स्वामी दयानन्द की दार्शनिक छाप नहीं तो क्या है?

२-४. द्रष्टव्य, Holy Bible U.S.A. Qenesis 1.1; 1.26; 2.17'

विषय-सूची

महर्षि दयानन्द के प्रादुर्भाव से पूर्व
भारत की दुर्दशा का चित्रण

महर्षि दयानन्द के प्रादुर्भाव से पूर्व इस देश की धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक अवस्था कैसे थी ? आज की पीढ़ी इसकी कल्पना भी नहीं कर सकती। देश की उस काल की दुर्दशा का चित्रण करना बड़े से बड़े विचारक तथा साहित्यकार के लिए कोई सरल कार्य नहीं।

झाड़ कंकर भूत खण्डहर के हमें भय खा रहे थे।
नित्य, नूतन मोक्षदाता पंथ बनते जा रहे थे।।

ईश्वर सृष्टिकर्ता है, यह तो देशवासी मानते थे, परन्तु जिन मूर्तियों को भगवान् मानकर पूजा जाता था, उनका बनाने वाला तो मनुष्य ही था, और है। ईश्वर भी तो एक नहीं था। कहने को तो ईश्वर एक है, यह कहा जाता था, परन्तु सबका उपास्य या भगवान् एक नहीं था। कोई शिव का उपासक था तो कोई विष्णु का, कोई राम का भक्त तो कोई कृष्ण का। किसका भगवान् बड़ा और किसका छोटा ? राम व कृष्ण दोनों महापुरुष थे, दोनों आदरणीय व अनुकरणीय हैं, परन्तु राम व कृष्ण पर भी विवाद होता रहा है।

गोसाईं तुलसीदास सन्त थे। आपको जब मन्दिर में देवपूजा के लिए कहा गया तो सामने कृष्ण जी की प्रतिमा को देखकर आपने माथा टेकने से इनकार कर दिया। आपने एक दोहा कहा जिसकी एक पंक्ति है— **'तुलसी मस्तक तब नवे जब धनुषबाण हो हाथ।'** अर्थात् बांसुरी वाले कृष्ण को मैं सिर नहीं झुका सकता। मैं तो धनुषधारी श्री राम का उपासक हूँ। जब सन्तों के मन में राम व कृष्ण की उपासना का भेदभाव हो तो जनसाधारण का तो कहना ही क्या ? हिन्दू समाज को ऐसी स्थिति में एक सूत्र में कौन पिरो सकता था ? देवी-देवताओं के नाम पर भयंकर भेद थे। हिन्दू समाज इन्हीं भद्दे भेदों के कारण कटा-फटा जा रहा था।

कुछ कहते थे कि महेश, गणेश, शिव, शंकर, इन्द्र, रुद्र आदि सब एक ईश्वर के नाम हैं, परन्तु शिव के मानने वाले विष्णु के जप से बिदकते थे और विष्णु का जप करने वाले शिव के जप का विरोध करते थे। शैवों के पुराण अलग थे और वैष्णवों के अलग। अपने-अपने उपास्य को दूसरे से बड़ा माना जाता था।

तीर्थों का झगड़ा अलग। तीर्थों के नाम पर विवाद पृथक् था। कोई हरिद्वार कहता व मानता था तो कुछ कहते हैं कि हरिद्वार नहीं हरद्वार कहो। मुक्ति की प्राप्ति के साधनों पर भी उग्र मतभेद रहा है। प्राचीनतम धर्म ग्रन्थ अनादि ज्ञान वेदों की कोई सुनता ही नहीं था। सच तो यह है कि वेद की सुनने वाला ही कोई नहीं था। वेद को पढ़ने व सुनने के अधिकार से अधिकांश हिन्दू समाज वंचित हो चुका था। स्त्रियों व शूद्रों को तो कतई वेदाधिकार नहीं था।

कुछ विद्वान् योग-विधि से ईश्वर के साक्षात्कार में विश्वास करते थे। अष्टांगयोग की महिमा का बखान कुछ लोग करते तो अवश्य थे, परन्तु यम-नियमों की दुहाई देने वाली जाति नदियों में डुबकी लगा कर, झाड़, झंखाड, पीपल, तुलसी की पूजा करके ही मुक्ति की प्राप्ति में विश्वास करती थी। क्या आवश्यकता है अहिंसा, सत्य, सन्तोष, स्वाध्याय, तप व ब्रह्मचर्य के पालन की?

गीता की दुहाई देने वाले यह प्रचार करते थे कि जीवात्मा को न आग जला सकती है, न जल गला सकता है, न शस्त्र काट सकता है तथा न वायु सुखा सकती है। शस्त्र जीव के तो टुकड़े कर ही नहीं सकता,

परन्तु हिन्दू समाज ने भगवान् को टुकड़े-टुकड़े करके रख दिया। कैसे?

देश में गली-गली, ग्राम-ग्राम और नगर-नगर यह प्रचार किया गया कि जीव ब्रह्म का अंश है। जीवात्मा जब ईश्वर का अंश है और जीव असंख्य हैं तो कल्पना करो कि भगवान् के कितने टुकड़े हो चुके और कितने और होंगे।

अहिंसा को धर्म का एक अंग माना जाता है। वैष्णव देवी के मानने

वाले व शाकाहारी होने से मांसाहार को पाप मानते थे तो काली कलकत्ते वाली पर बकरे काट कर चढ़ाये जाते हैं। नेपाल में पशुपति पर भैंसों की बलि दी जाती। कहीं मन्दिरों में मदिरा का प्रसाद दिया जाता है। एक सरल हृदय ईश्वर-भक्त इस उलझन में उलझ जाता है कि धर्म क्या है और अधर्म क्या है? महर्षि दयानन्द ने समाज की यह वैचारिक अराजकता देखी।

जीव कर्म करने में तो स्वतन्त्र है, परन्तु फल ईश्वर की व्यवस्था के अनुसार मिलता है। कर्म का फल टल नहीं सकता। श्री कृष्ण का यह सन्देश और गीता का सिद्धान्त हमें मान्य है कि सत्कर्मों से ही मुक्ति मिलती है, परन्तु हिन्दू समाज में ऐसे कितने लोग हैं जो व्यवहार में ऐसा मानते हैं? तिलक लगाने से मुक्ति, गंगा-स्नान से मुक्ति, तीर्थ-यात्रा से मुक्ति और गुरु-कृपा से भी तो सब पाप कट जाते हैं। जी भर कर दुष्कर्म कर लो। सब प्रकार के पापों को क्षमा करने के धर्माचार्यों के द्वारा उपाय बताये जाते थे। व्रत उपवास का प्रयोजन ही सब पाप कर्मों का क्षमा करवाना व मनोकामनाओं की पूर्ति माना गया।

इसी दुर्दशा को देखकर कवि ने लिखा था—

पाप करने के लिए ही पुण्य करते जा रहे थे।

कहिए! वेद-शास्त्र-गीता की कर्मफल सिद्धान्त की धर्म गुरुओं ने कैसी दुर्गति कर रखी थी! क्या-क्या लिखें और क्या-क्या बताएँ? ईश्वर के स्वरूप के विषय में इतना ज्ञान घोटाला कि पढ़-सुनकर हृदय रक्तरोदन करता है। **'ईशावास्य'** उपनिषद् को मानने वाली जाति ने ईश्वर की सर्वव्यापकता को तिलाञ्जलि दे दी। कोई कहता ईश्वर कैलाश पर्वत पर है तो दूसरा कहता नहीं क्षीरसागर में है। एक कहता कण-कण में है तो दूसरा कहता नहीं वह प्रभु ऊपर रहता है।

कबीर जी ने कहा—

जो पत्थर पूजे रब मिले तो हम पूजें पहाड़।
इस पत्थर से चक्की भली जो पीस खावे संसार॥

इस शिक्षा को किनारे करके भगवान् को भोग देने वाला दाता मानने वाली जाति भगवान् की मूर्तियाँ बनाकर उसे भोग लगाने, नहलाने, सुलाने, खिलाने, पिलाने व वस्त्र पहनाने के कर्मकाण्ड में लग गई। ईश्वर हमारा रक्षक है। **हमें ईश्वर की लुटेरों, आक्रमणकारियों से रखवाली करनी पड़ गई।** ईश्वर को किसी ने कभी खाते-पीते नहीं देखा। वह प्रभु अन्न, धन व रत्नों का देने वाला है। देश में भगवान् को आसन, सिंहासन व मुकट भेंट होने लगे। अस्पृश्यता आदि रोगों व सामाजिक कुरीतियों का दुःखदायी वर्णन यहाँ क्या करें। यह है महर्षि दयानन्द के प्रादुर्भाव से पूर्व के भारत की एक झांकी।

शकुन, अपशकुन, शुभ, अशुभ, मुहूर्त्त की चिन्ता ने समाज को खोखला, मृतप्राय व अकर्मण्य बना दिया था। दीन, दरिद्र, दलित वर्ग तथा करोड़ों बाल विधवाओं का आर्तनाद सुनकर सहृदय जनों के कलेजे फटे जा रहे थे। मूक पशुओं पर दिन-रैन आरी व कटारी चल रही थी। अनमेल विवाह हिन्दू समाज पर कलङ्क थे तो बाल-विवाह इस देश के बल पौरुष को निगल रहे थे। जाति के नेता, पण्डित व तथाकथित समाजसेवी उत्साह-शून्य व असहाय (Hopeless & Helpless) होकर मूकदर्शक बने हाथ पर हाथ धरे बैठे थे।

यह झांकी अधूरी ही रहेगी यदि हम संकेत रूप में यह न बताएँ कि ब्राह्मण कुल में जन्मे विद्वान् नेता भी वेद के बारे कुछ नहीं जानते थे। हा, इतना अन्धेर! ब्राह्मण परिवार में जन्मे प्रसिद्ध सुधारक राजा राममोहन राय का यह वाक्य, "Manu the best of all the commentators of the Vedas." अर्थात् वेद के भाष्यकारों में सर्वश्रेष्ठ मनु... पढ़कर हमें बहुत धक्का लगा। मनुजी ने तो किसी भी वेद का भाष्य किया ही नहीं।

विधर्मियों में भी अन्धविश्वासों की कोई कमी नहीं थी और न ही आज है। तौहीद का शोर मचाने वाले मुसलमान कबर पूजा व ताज़िया पूजन को जितना महत्त्व देते हैं उतना एक ईशोपासना व धर्माचरण को नहीं। परकीय मत ईश्वर को आकाशस्थ मानते हैं, परन्तु कोई प्रश्न करे तो प्रभु को झट से हाज़िर नाज़िर (Omnipresent) बताते हैं। यह ज्ञान

घोटाला किसी की पकड़ में न आ रहा था।

परकीय मत हिन्दुओं पर वार पर वार करते जा रहे थे। कोई उत्तर प्रत्युत्तर देने वाला नहीं था। मुसलमानों ने सैंकड़ों अश्लील पुस्तकें प्रकाशित कीं। ईसाई भी लण्डन, मदुराई व कलकत्ता से धड़ाधड़ हिन्दू धर्म पर प्रहार कर रहे थे। इतिहास विकृत प्रदूषित किया जा रहा था। स्वामी विवेकानन्द के शिकागो में अंग्रेजी भाषण के पश्चात् कोलकाता से The Religious History OF India नाम की एक पुस्तक में John Murdoh ने भी श्री कृष्ण का उल्लेख करते हुए लिखा था, "He is represented as mischievous and disobedient as a child, guilty of theft and lying, stealing the clothes of the gopies and sporting with them...." अर्थात् श्री कृष्ण को ईसाइयों ने एक नटखट अवज्ञाकारी बच्चा, चोरी तथा झूठ बोलने का अपराधी, गोपियों के वस्त्र चुराने वाला तथा उनके संग मनोरंजन व क्रीड़ा करने वाला प्रचारित करके लाखों हिन्दुओं को धर्मच्युत किया। **स्वामी विवेकानन्द जी ने इसका प्रतिवाद करने के लिए दो वाक्य न लिखे। कुछ तो उत्तर देते।** इस घृणित पुस्तक के प्रकाशित होने तक ऋषि दयानन्द का अमरग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश छप चुका था। पं० लेखराम, पं० कृपाराम व पं० आर्यमुनि, महात्मा नित्यानन्द, पं० गणपति शर्मा देशभर में शास्त्रार्थ करके अवैदिक मतों को ललकार कर पछाड़ रहे थे।

अत: लेखक को यदि डर था तो ऋषि के इन शिष्यों का सो उसने अपनी इसी पुस्तक में अन्यत्र ऋषि दयानन्द के श्री कृष्ण विषयक विचार भी दिये। हमने महर्षि के आगमन से पूर्व की अवस्था का चित्रण करते हुए ऋषि के बलिदान के कुछ वर्ष पश्चात् छपी उक्त पुस्तक के ये शब्द उद्धृत किये हैं।

आर्य मनीषी पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय ने ठीक ही तो लिखा है कि ऋषि के प्रादुर्भाव से पूर्व "Religion was a matter of faith. All reasoning was tabood." अर्थात् धर्म तो तब केवल विश्वास की वस्तु था। बुद्धि से लाभ उठाना, तर्क करना वर्जित था। उस युग के

धर्माचार्यों के बारे में विद्वान् विचारक ने यह कटु सत्य लिखा है, "They were the worshippers of gold rather than God." अर्थात् ये लोग सच्चिदानन्द भगवान् के नहीं, स्वर्ण सम्पदा के पूजने वाले थे। ऋषि इन परिस्थितियों में आया।

नित्य वेद का गूढ़ तत्त्व जग को समझाया।
सत्यनिष्ठ ने इस निष्ठा का मूल्य चुकाया॥
जनहित देकर जान अमर पद योगी पाया।
श्रुति श्रवण का खोया, फिर अधिकार दिलाया॥



महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

जन्म-कुल-बाल्यकाल

महर्षि दयानन्द जी ने अपनी संक्षिप्त आत्मकथा में लिखा है कि मेरा जन्म विक्रम संवत् १८८१ में काठियावाड़, गुजरात प्रदेश मजोकठा देश मोर्बी राज्य में औदीच्य ब्राह्मण परिवार में हुआ। भारतीय साधुओं की यह मर्यादा अथवा परम्परा है कि वे अपने जन्म-स्थान व कुल-परिवार का नाम नहीं बताया करते। इस नियम के अपवाद तो हैं, परन्तु साधु का धर्म यही है कि अपने जन्म-स्थान व कुल आदि का ढोल न पीटे। साधु महात्मा प्रायः अपनी संन्यास की आयु बताया करते हैं। देह की आयु अथवा पूर्वाश्रम की आयु नहीं बताई जाती। पूर्वाश्रमी अपने आपको मृत (Dead) बताते हैं।

ऋषि ने अपने जन्म-स्थान व कुल की, माता-पिता के नाम की जानकारी न देने का एक और भी कारण बताया है। गुजरात प्रदेश में मोह विशेष होने से उनके परिवार वाले पता लगने पर पुनः उनपर घर चलने का दबाव डाल सकते थे। उन्हें माता-पिता की सेवा व घर के दायित्व

निभाने पड़ते। इससे परोपकार, वेदोद्धार, देश-सुधार तथा आत्मोन्नति के सब कार्य रुक जाते।

महर्षि ने अपनी जन्मतिथि का भी कहीं उल्लेख नहीं किया। जो जन्मतिथि फाल्गुन बदि दशमी तदनुसार १२ फरवरी सन् १८२५ अब आर्यसमाज ने मान ली है, यह विद्वानों की ऊहा व खोज का निष्कर्ष है। महर्षि के एक निन्दक श्री लाला जीयालाल जैनी ने तो ऋषि की एक मनगढ़न्त जन्मपत्री बनाकर कुछ और ही तिथि व संवत् प्रचारित कर दिया था। सनातनधर्मी विद्वान् व नेता पं० गंगाप्रसाद जी शास्त्री के अनुसार जीयालाल जी के लिए ऐसी धोखाधड़ी करना कोई कठिन कार्य नहीं था। कारण वह स्वयं ज्योतिषी था।

जीयालाल जी द्वारा बनाई जन्मपत्री की तस्करी करके भोपाल के श्री आदित्यपाल ने भी ऋषि की जन्मतिथि आदि की खोज करने का अभिनय किया। श्रीमान् डॉ० ज्वलन्तकुमार जी ने बहुत श्रम करके उसकी कल्पनाओं का भवन ध्वस्त कर दिया।

ऋषि-जीवन की सघन खोज से उनके, उनके पिता व जन्मस्थान के नाम की प्रामाणिक सुनिश्चित जानकारी मिल गई। श्री स्वामी जी महाराज का पूर्वनाम मूलजी अथवा मूलशंकर था। आपका एक अन्य नाम दयाराम (दयालजी) भी था। गुजरात में ऐसी ही परम्परा है। आपके पिताश्री का नाम करसन जी तिवाड़ी था। ऋषि-जीवन के एक अधिकारी विद्वान् टंकारा निवासी श्री दयालमुनि जी ने गहन खोज करके यह सिद्ध किया है कि ऋषि की माता के नाम की कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं है। टंकारा, मोर्बी क्षेत्र के लोगों व राज्य के अधिकारियों ने ऋषि-जीवन की खोज करने वाले आरम्भिक काल के विद्वानों पं० लेखराम जी, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी आदि को पूरा सहयोग न किया। इस कारण कुछ भ्रान्तियाँ फैल गईं। सुधारक दयानन्द को उस युग में पुराने विचार के लोग नास्तिक व ईसाइयों का दूत समझते थे।

श्री दयालमुनि जी के मत से हम सहमत हैं कि ऋषि जी की माता का नाम रुक्मणी बाई, यशोदा बाई अथवा अमृताबाई नहीं था। श्री

दयालमुनि लिखते हैं—**"मैं स्वयं अपनी निजी साक्षी से कहता हूँ कि पोपटलाल का अपरनाम प्रभाशंकर था और प्राणशंकर उनके छोटे भाई थे। इन दोनों के साथ मेरा निजी परिचय था। पोपटलाल के तृतीय पुत्र जयन्तीलाल तथा प्राणशंकर के तृतीय पुत्र मेरे सहपाठी थे।"** इस विषय में इससे बढ़कर पुष्ट प्रमाण और क्या हो सकता है?

मूलशंकर ने शिव-व्रत धारण किया

ऋषि के पिता शैव मत के मानने वाले एक प्रतिष्ठित और सम्पन्न राज्य अधिकारी थे। परिवार सामवेदी ब्राह्मण था, परन्तु आपको घर पर यजुर्वेद पढ़ाया गया। यजुर्वेद का रुद्राध्याय आपको कण्ठस्थ करवाया गया। इस प्रकार आपकी आरम्भिक शिक्षा किसी पाठशाला में नहीं प्रत्युत घर पर ही हुई। दश वर्ष की अवस्था में कुल-परम्परा के अनुसार आप पार्थिव-पूजन करने लगे। पिता ने शिवरात्रि पर व्रत करने का आग्रह किया, परन्तु आपने व्रत नहीं किया। तब आपको शिवरात्रि की कथा सुनाई गई। दयालजी को कथा अच्छी लगी तो आपने उपवास करने का निश्चय कर लिया। माता ने तो पुत्र को बहुत कहा कि तू उपवास मत कर, परन्तु बालक ने माता का कहा नहीं माना और उपवास कर लिया। आपने पूना-प्रवचन में कहा कि उपवास मुझसे किया नहीं गया।

टंकारा में ग्राम के बाहर डेमी नदी के तट पर एक देवालय में शिवरात्रि के दिन रात्रि के समय बहुत लोग एकत्र हुए। मूलशंकर के माता-पिता और स्वयं मूलशंकर भी मन्दिर में गये। भक्तजन भक्तिभाव से पूजा अर्चना में व्यस्त हो गये। पहले पहर व दूसरे पहर की पूजा के पश्चात् बारह बजने पर सब भक्त झपकी लेने लगे। मूलशंकर के पिता को भी निद्रा ने घेरे में ले लिया। व्रत निष्फल न हो इस भय के कारण बालक मूलजी जैसे कैसे यत्नपूर्वक जागता रहा। शैवों की ऐसी मान्यता है कि आधी रात को शिवलिङ्ग से अथवा शिव के प्रतीक से भगवान् शिव प्रकट होकर भक्तों को दर्शन देते हैं। इस घटना के समय बालक मूलशंकर मात्र १३ या १४ वर्ष का था। जब सब जन सो गये तो मन्दिर में अकेला मूलशंकर नयन उघाड़े उस घड़ी की प्रतीक्षा करने लगा जब शिवजी मूर्ति से प्रकट

होकर अपने इस भक्त को दर्शन देकर पूर्णकाम करेंगे। प्रतीक्षा करते-करते उसे आधी रात हो गई। चारों ओर घना अन्धेरा छा गया। केवल मिट्टी का एक नन्हा दीपक टिमटिमा रहा था। **वही मूलजी का साथ दे रहा था।**

किसी कवि की यह पंक्ति मूलशंकर व दीपक पर चरितार्थ हो रही थी—**बेख़ाब निगाहों का साथी हर एक सितारा होता है।** अर्थात् जिन नयनों में नींद न हो उनका संगी साथी प्रत्येक तारा होता है। **मन्दिर के भीतर उस दिन बस मन्दिर का वह नन्हा दीपक मूलजी के नयनों का साथ निभा रहा था।**

तभी मन्दिर के कोने में कुछ हिलने-डुलने की आवाज़ आई। बालक चौंका। उसने देखा कि भगवान् शिवजी तो नहीं, परन्तु एक चूहे ने अवश्य अपने बिल से निकलकर पाषाणमूर्ति पर चढ़कर चढ़ाई गई भेंट को खाना आरम्भ कर दिया है। इस छोटी-सी घटना ने मूलजी को सोचने पर बाध्य कर दिया। अपने आप में यह एक छोटी-सी घटना विश्व में हलचल पैदा करने वाले एक अन्दोलन का आधार बनने में पर्याप्त समर्थ सिद्ध हुई। भारत के पाषाण-पूजक हिन्दुओं ने महमूद गज़नवी आदि आक्रमणकारियों को मन्दिरों को लूटते, ध्वस्त करते व मूर्तियों को तोड़ते देखा, परन्तु किसी की भी आँख न खुली। किसी ने कुछ न सीखा। टंकारा में उस दिन बालक मूलशंकर की इस छोटी-सी घटना ने आँखें खोल दीं।

किसी पश्चिमी विचारक का कथन है, "Little things are great for the great men and great things are little for the little men." अर्थात् बड़े व्यक्तियों के लिए छोटी-छोटी घटनाएँ बड़ी होती हैं, परन्तु बौने दिमाग़ों के लिए—छोटे मनुष्यों के लिए बड़ी-बड़ी घटनाएँ भी छोटी होती हैं। उस रात्रि टंकारा के मन्दिर में एक चूहे की उछलकूद ने जिस वैचारिक क्रान्ति की अधारशिला रखी उसका कोई मूल्यांकन तो करे! कविर्मनीषी पं० चमूपति जी ने एक कविता में इस घटना पर यह भावपूर्ण पंक्ति लिखी है—

जिससे यह जहाँ पुरनूर हुआ उस रात की अज़्मत क्या होगी!

अर्थात् जिस शिवरात्रि से सकल संसार आलोकित हो गया उस रात की महिमा को—गरिमा को शब्दों में कौन बता सकता है ?

एक प्रश्न का उत्तर—यहाँ इस घटना विषयक एक प्रश्न का संक्षिप्त उत्तर देना हम अपना आवश्यक कर्त्तव्य मानते हैं। कुछ महानुभाव जनसाधारण में बुद्धि-भेद पैदा करने के लिए यह प्रश्न खड़ा करते देखे गये हैं कि यह घटना टंकारा में नहीं घटी। यह मन्दिर तो छोटा-सा है। यह घटना बांकनेर राज्य की सीमा पर स्थित जड़ेश्वर के विशाल मन्दिर में घटी। दयालमुनि जी ने इस शंका को निर्मूल सिद्ध कर दिया है।

१. जड़ेश्वर के मन्दिर का फ़र्श तो तब भी पक्का था। वहाँ चूहे के बिल का होना सर्वथा असम्भव है। टंकारा के मन्दिर में ही यह सम्भव है।

२. जड़ेश्वर का मन्दिर तो आज से ५०-५१ वर्ष पूर्व भी जंगल से घिरा हुआ था। ऋषि दयानन्द के समय वहाँ से आधी रात को एक घण्टे में पैदल घर आना कैसे सम्भव हो सकता था ? वहाँ पिता से बातचीत कर अनुमति लेना, माता से वार्त्तालाप करके कुछ खाकर सो जाना कैसे सम्भव हो सकता था। यह घटना टंकारा के देवालय में ही घटी। इसमें कुछ भी शंका शेष नहीं रहती।

शिव का स्वरूप क्या है ?

जब चूहे की उछलकूद ने मूलजी के मन में नई-नई शंकाएँ जगा दीं कि शिव कौन है ? उसका स्वरूप क्या है ? वह कहाँ निवास करता है ? उसका इस शिलाखण्ड से क्या सम्बन्ध है ? इस प्रतिमा में कौन-सी लुप्त शक्तियाँ हैं ? पत्थर के इस निर्जीव टुकड़े में इतनी भी शक्ति नहीं कि एक तुच्छ चूहे से अपनी रक्षा कर सके। यह किसी मनुष्य की क्या रक्षा कर सकता है ? भला यह संसार का क्या भला कर सकता है ? ऐसी और भी कई शंकाओं ने बालक के हृदय को घेर लिया। जिस श्रद्धा भक्ति से उसने उपवास रखा था वह सब एकदम उड़ गई। उसने अपने पिताश्री को जगाया और यह प्रश्न उनके सामने रखे।

पिता ने इससे पूर्व ऐसा तर्क-वितर्क सुना ही नहीं था। अन्ध-भक्ति से प्रायः लोग धार्मिक बातों में तर्क करना अधार्मिकता मानते हैं। पिता ने

डांट-डपट करके एक ही झटके में पुत्र को चुप करवा दिया। पिता की दृष्टि में पुत्र का शंका करना, प्रश्न उठाना उद्दण्डता का प्रदर्शन था। भला वह पुत्र की इस उद्दण्डता को कैसे सहन कर सकता था ? पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय जी ने यथार्थ ही तो लिखा है कि **श्रद्धा व संशय तो जन्मजात शत्रु हैं। ये दोनों एक साथ बालक के मन में कदापि नहीं समा सकते थे। युक्ति का आलोक ही संशय के तम का निवारण कर सकता था।**

हम ऊपर संकेत कर ही चुके हैं कि बालक मन्दिर से घर चला गया। उसने निश्चित समय से पूर्व ही अपना उपवास तोड़ दिया। जब कर्सन जी घर आये तो उस पर बहुत क्रुद्ध हुए, परन्तु बालक की माता के हस्तक्षेप करने से यह बात कुछ समय के लिए शान्त हो गई। बालक को अब जीवन की पहेली सन्तप्त करने लगी। वह जिस किसी के सम्पर्क में आता, अपने गुरु से, विद्वानों से ये प्रश्न पूछता रहता, परन्तु इन प्रश्नों का उत्तर उसे कोई न दे सका। धर्म को लोग विश्वास की वस्तु मानते चले आ रहे थे। यहाँ सर्व प्रकार का तर्क वर्जित था। शिवरात्रि की उस रात ने मूलजी के मन में जो हलचल पैदा की थी उसके दूरगामी परिणाम निकले। कवि ने लिखा है—

जब दुनिया सारी नींद में थी दुखियों की किस्मत जगा उठी।
तब पश्चिम[1] से आलोक हुआ अज्ञान अविद्या भाग उठी॥

दो और घटनाएँ तथा एक नया प्रश्न

इस बीच थोड़े ही समय में एक दूसरे के पश्चात् परिवार में दो और घटनाएँ घट गईं। मूलशंकर की उनसे छोटी बहन का निधन हो गया। बालक ने पहली बार ही किसी को मरते हुए देखा। महर्षि ने स्वयं लिखा है कि इससे मुझे अतिशय भय लगा। तब आपके नयनों में एक भी अश्रुकण न गिरा। पिता ने पुत्र को पाषाण हृदय कहा।

आयु के १९वें वर्ष में पहुँचे तो आपसे अत्यधिक स्नेह करने वाले

१. टंकारा (गुजरात) भारत के पश्चिम में है।

आपके चाचा की मृत्यु हो गई। चाचा को देह-त्याग करते देखा तो रो-रो कर आपकी आँखें सूज गईं। **किसी को रोगी व मृत देखकर जैसे कभी महात्मा बुद्ध मृत्यु पर विचार करने में डूबे रहते थे ठीक वैसे ही मृत्यु की इन दो घटनाओं ने मूलशंकर को आकुल-व्याकुल कर दिया। मृत्यु पर कैसे विजय पाई जाए ? वह सबसे इसका उपाय जानने के लिए प्रश्न पूछता रहता था।** पूर्व से ही संशयों की धधक रही अग्नि में इसने और ईन्धन डाल दिया। पण्डितों ने योगाभ्यास करने के लिए कहा। माता-पिता ने पुत्र को प्रणय-सूत्र में बांधने का निश्चय किया।

मूलशंकर के पिता ने जमींदारी का काम सम्भालने को कहा, परन्तु मूलजी ने गृह-त्यागने का पक्का मन बना लिया। वह यह भली-भाँति जानता था कि एक बार गृहस्थ के जाल में फंसकर फिर इससे बाहर निकलना उसके लिए अति कठिन होगा। घर में विवाह की तैयारी होती देखकर मूलजी ने परिवार के मोह-बन्धन के तार तोड़ने की सोच ली।

मूलशंकर का गृह-त्याग

एक रात्रि उपयुक्त अवसर जानकर मूलशंकर ने चुपचाप अपने गृह का त्याग कर वन-पर्वतों की राह ली। योगियों की खोज करते-कराते भटकते हुए अहमदाबाद पहुंचे। आपको ठगने वाले नामधारी वैरागी भी मार्ग में मिले। एक वैरागी ने चिढ़ाकर मूलजी से तीन अंगूठियाँ मूर्ति को समर्पित करवा दीं। शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी नाम धराकर सिद्धपुर के मेले में पहुँचे। सोचा यहाँ कोई तो योगी मिलेगा जो अमर होने का उपाय सुझावेगा। आपको अपने परिवार का एक परिचित व्यक्ति मिल गया। उसने आपके पिता को सिद्धपुर की ओर जाने की जानकारी दे दी।

घर वाले आपकी खोज कर ही रहे थे। पिता अपने साथ चार सिपाही लेकर सिद्धपुर आ धमके। एक मठ में मूलजी के सामने आकर खड़े हो गये। पिता को देखकर मूलशंकर भयभीत हो गया। पिता की तर्जना का डर था। आपने कसकर पिता के पाँव पकड़कर कहा कि मैं तो घर आने ही वाला था। पिता ने आपका तूँबा फोड़ दिया, वस्त्र फाड़ डाले और काठियावाड़ की रीति से वस्त्र धारण करवाये। सिपाहियों को मूलशंकर

की रखवाली का काम दिया गया। वे अपने काम में चौकस थे तो युवा मूलजी के सामने अपना लक्ष्य था। वह उसके लिए चौकस था। एक रात्रि सोने का नाटक करके उन सिपाहियों को भ्रमित करके जब उनकी आँख लग गई तो मूलजी फिर भाग निकले। अबकी बार पर्याप्त यत्न करने पर भी आप इनकी पकड़ में नहीं आये। संन्यास धारण कर दयानन्द सरस्वती नाम धराकर योगियों की खोज में जहाँ कहीं किसी ने किसी योगी, ध्यानी, ज्ञानी का पता दिया यह सत्यान्वेषी 'जिज्ञासु' उसके पास पहुँचा। कई गुरुजनों की सेवा करके योगाभ्यास में पर्याप्त गति प्राप्त कर ली।

सद्ज्ञान प्राप्ति के लिए आपके मन में अभी भी बहुत ललक थी। आपको साधुवेश में अनेक ढोंगी मिले। हरिद्वार के कुम्भ मेले में गये। वहाँ भी ढोंग व पाखण्ड देखकर निराशा ही पल्ले पड़ी। वन पर्वतों पर ज्ञानियों योगियों की खोज में बहुत दुःख कष्ट झेले। कई बार मृत्यु के मुख में जाते-जाते बचे। हिंसक पशुओं का सामना करना पड़ा। वाममार्गियों ने देवी की भेंट चढ़ाना चाहा। उनसे भी जैसे-कैसे बच निकले। घने जंगलों व पर्वतीय नदी नालों के प्रवाह व हिमाच्छादित शिखरों पर आपको कैसे-कैसे अनुभव हुए, यह एक लम्बी व शिक्षाप्रद कहानी है।

सत्य योग विद्या पर सब कुछ वार दिया

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मृत्यु पर विजय पाने के लिए सत्य योग विद्या को सीखने के लिए योगियों की खोज में तथा सच्चे शिव की प्राप्ति के लिए दुर्गम वनों, पर्वतों की यात्रा करते हुए दारुण दुःख सहे। इन कष्टप्रद यात्राओं के दो प्रेरक प्रसंग देकर उनके जीवन के अगले मोड़ की कथा लिखेंगे। नदी नालों, जंगलों को चीरकर स्वामी जी जैसे तैसे ओखी मठ पहुँचे। वहाँ के महन्त ने जब तेजस्वी, प्रतापी, सुडौल, सुगठित शरीर के युवा संन्यासी दयानन्द को देखा तो कहा—**"तुम हमारे चेले हो जाओ, यहाँ रहो, लाखों के कारख़ाने तुम्हारे हाथ में हो जावेंगे। मेरे पीछे तुम्हीं महन्त होंगे।"**

स्वामी जी ने उत्तर दिया—**"ऐसी मेरी इच्छा होती तो अपने माता,**

पिता, बन्धु, कुटुम्ब और घर आदि ही क्यों छोड़ता? क्या तुम्हारा स्थान और तुम उनसे भी अधिक हो सकते हो? मैंने जिसलिए सब छोड़े हैं वह तुम्हारे पास किञ्चित् मात्र भी नहीं है। उसने पूछा कि वह क्या बात है? मैंने उत्तर दिया कि सत्यविद्या, योग, मुक्ति और अपने आत्मा की पवित्रता आदि गुणों से धर्मात्मतापूर्वक उन्नति करना है। तब महन्त ने कहा कि अच्छा तुम कुछ दिन यहाँ रहो। मैंने उनको कुछ उत्तर न दिया और प्रातःकाल उठके मार्ग में चलके जोशीमठ को पहुँच के वहाँ के दक्षिणी शास्त्री और संन्यासी थे उनसे मिलकर वहाँ ठहरा।"[१]

सत्यान्वेषण की उत्कण्ठा

इन्हीं पर्वतीय यात्राओं की एक महत्त्वपूर्ण घटना हम ऋषि के अपने शब्दों में यहाँ देना चाहेंगे। महाराज! काशीपुर पहुँचे। "हिमालय पर्वत पर पहुँच कर देह त्याग करना चाहिए, ऐसी इच्छा हुई। यह वि०सं० २०१२ की घटना है। "परन्तु मन में यह विचार आ गया कि ज्ञान-प्राप्ति के पश्चात् देह छोड़ना चाहिये। वहाँ से द्रोणसागर जा पहुँचा। अतः वहाँ से मुरादाबाद होता हुआ सम्भल आ पहुँचा। वहाँ से गढ़मुक्तेश्वर से होते हुए पुनः मैं गंगा तट पर आ निकला। उस समय अन्य धार्मिक पुस्तकों के अतिरिक्त मेरे पास निम्नलिखित पुस्तकें भी थीं। शिव सन्ध्या, हठ योग प्रदीपिका, केशाराणि संगीत (?) प्रायः मैं इन्हीं पुस्तकों को यात्रा में पढ़ा करता था। उनमें से कई पुस्तकों का विषय नाड़ी चक्र था। पर उनमें इस विषय का ऐसा लम्बा चौड़ा विवरण था कि पुरुष पढ़ता-पढ़ता थक जाता। मैं उन्हें कभी भी पूर्णतया अपनी बुद्धि में न ला सका और न ही समझकर स्मरण कर सका। अतः मुझे विचार हुआ कि न जाने ये सत्य भी हैं वा नहीं। ऐसा सन्देह होता ही गया, यद्यपि मैं अपने संशय मिटाने का यत्न करता रहा। परन्तु वह सन्देह दूर न हुए और न ही उनके दूर करने का कोई अवसर प्राप्त हुआ।

१. द्रष्टव्य, ऋषि की स्वलिखित आत्मकथा—'महर्षि दयानन्द सरस्वती : सम्पूर्ण जीवन-चरित्र' भाग-१, पृष्ठ ५१।

एक दिन दैव संयोग से एक शव मुझे नदी में बहता हुआ मिला। तब समुचित अवसर प्राप्त हुआ कि मैं उसकी परीक्षा करता और अपने मन में उन पुस्तकों के सम्बन्ध में जो विचार उत्पन्न हो चुके थे, उनका निर्णय करता। सो उन पुस्तकों को जो मेरे पास थीं, समीप ही एक ओर रख, वस्त्रों को ऊपर उठा मैं नदी तट पर आया। मैंने तीक्षण चाकू से जैसे हो सका उसे यथायोग्य काटना प्रारम्भ किया और हृदय को उसमें से निकाल लिया और ध्यानपूर्वक देख परीक्षा की। अब पुस्तक लिखित वर्णन की उससे तुलना करने लगा। ऐसे ही शिर और ग्रीवा के अंगों को काटकर सामने रक्खा। यह निश्चय करके ही दोनों अर्थात् पुस्तक और शव लेश मात्र भी परस्पर नहीं मिलते, मैंने पुस्तकों को फाड़कर उनके टुकड़े कर डाले और शव को फैंक साथ ही पुस्तकों के टुकड़ों को भी नदी में फैंक दिया। उसी समय से शनैः शनैः मैं यह परिणाम निकालता गया कि वेदों, उपनिषदों, पातञ्जल और सांख्यशास्त्र के अतिरिक्त अन्य समस्त पुस्तकें जो विज्ञान और विद्या पर लिखी गईं मिथ्या और अशुद्ध हैं।''[१]

श्री पं० चमूपति जी ने इस घटना पर लिखा है—

किताबों का सच झूठ जिसने खंगाला।
दयानन्द स्वामी! तिरा बोल बाला॥

भ्रम-भञ्जन

ओखी मठ की इस घटना का उल्लेख करते हुए हमें देवेन्द्रनाथ जी मुखोपाध्याय की एक घटना का स्मरण हो आया। श्रीमान् देवेन्द्रबाबू जी ने ऋषि जीवन की सामग्री की खोज में अथक श्रम किया। उनके तप, त्याग व कष्ट सहन की हम भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। कुछ सज्जनों को यह भ्रम है कि उनकी खोज सर्वथा चूक रहित है। हमारा मत है कि जीव की अल्पज्ञता के कारण कहीं-कहीं किसी निष्कर्ष पर पहुँचने में उनसे

१. द्रष्टव्य, 'महर्षि दयानन्द सरस्वती : सम्पूर्ण जीवन चरित्र' में ऋषि का आत्म चरित, पृष्ठ ५४-५५।

भी भूलचूक हुई। कई बार उन्हें अपनी सम्मति में संशोधन करना पड़ा। श्रीयुत दयालमुनि जी का भी मत यही है कि देवेन्द्र बाबू कहीं-कहीं चूक कर गये।

सन् १९१४ में आप गुरुकुल वृन्दावन के उत्सव पर पधारे। वहाँ पर व्याख्यान देते हुए महात्मा मुंशीराम जी ने कहा—"ऋषि दयानन्द सत्य की खोज में घर से निकले थे।" देवेन्द्र बाबू जी ने यह वाक्य सुनकर कहा—"आर्यसमाजी वैसे ही मनगढ़न्त बातें कह देते हैं। दयानन्द ने सत्य की खोज के लिए नहीं प्रत्युत योग की खोज के लिए गृह-त्याग किया।"[१]

हम देवेन्द्रबाबू के कथन का प्रतिवाद तो नहीं करते, परन्तु यह एक आंशिक सत्य है। हम पीछे बता चुके हैं कि गृह-त्याग के समय मूलजी के मन में योग की खोज करने का लक्ष्य नहीं था। उनकी पहली समस्या या शंका सच्चे शिव की खोज था, दूसरी समस्या थी मृत्यु पर विजय और तीसरी चाहना थी योगविद्या को सीखना। ओखी मठ की गद्दी को ठुकराने से एक वर्ष पश्चात् ऋषि जी ने गढ़मुक्तेश्वर में शव को क्यों काटा? अपनी जी जान से प्यारी पुस्तकों को फाड़कर शव सहित नदी में क्यों प्रवाहित किया? केवल सत्यान्वेषण के लिए ही ऐसा किया।

ओखी मठ के महन्त को महाराज ने क्या उत्तर दिया? कहा कि वे घर से "सत्यविद्या, योग, मुक्ति तथा अपने आत्मा की पवित्रता आदि गुणों से धर्मात्मतापूर्वक उन्नति करना" यह उद्देश्य लेकर निकले थे।

तप-तप कर कंचन-सी काया, उज्ज्वल सतेज, सम्पुष्ट हुई।
मन दृढ़ता से सम्पन्न हुआ, सब हृदय-भावना पुष्ट हुई।

—डॉ० हरिशंकर शर्मा

---

१. द्रष्टव्य, 'आर्य मुसाफ़िर' उर्दू मासिक लाहौर अप्रैल १९१५ के अंक में पृष्ठ १४ पर श्री पं० सन्तराम जी बी०ए० सम्पादक का लेख।

मथुरा नगरी में दण्डी गुरु विरजानन्द की कुटिया पर

१५ वर्ष तक निरन्तर स्वामी दयानन्द अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिए कड़ा संघर्ष करते चले आ रहे थे। नर्मदा के तट पर, अलखनन्दा, गंगा व यमुना आदि नदियों के तट पर पर्वत शिखरों पर, जहाँ भी किसी ज्ञानी, ध्यानी व योगी का पता चला आपने वहीं जाकर भिक्षा की झोली पसारी। बहुत कुछ पाया भी और कई बड़े-बड़े मठों व तीर्थों पर पोपलीला व घने पाखण्ड भी देखे। **योगविद्या में बहुत कुछ गति पाई, परन्तु जो कुछ पाया उससे सद्ज्ञान की प्यास और भड़क उठी।** आपने कई महात्माओं, संन्यासियों से मथुरा की एक नन्हीं-सी कुटी में एक छोटी-सी पाठशाला चलाने वाले वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध प्रज्ञाचक्षु दण्डी स्वामी विरजानन्द जी की बहुत कीर्ति सुनी। दयानन्द झोली पसारे गुरु विरजानन्द के द्वार पर पहुँच गया। मुनि विरजानन्द की कुटी का द्वार खटखटाया। गुरु विरजानन्द के कानों ने कुटिया के द्वार की जो खटखट सुनी, वास्तव में वह नवयुग की आहट थी।

कविवर विद्याभूषण विभु लिखते हैं—

पहुँच वहाँ पर परिव्राजक।
खड़े रहे कुछ देरी तक॥
द्वार खटखटा कर कर से।
बोले वेग उच्च स्वर से॥

द्वार खोलिये कृपायतन।
आया हूँ जिज्ञासु बन॥
प्यासा हूँ श्री दर्शन का।
खोजी ईश निरञ्जन का॥

शब्द किवारों का सुनकर।
अन्दर से बोले यतिवर॥
क्या है तेरा नाम बता।
मुझसे है क्या काम बता॥

दयानन्द है कृपायतन!
कहते हैं मुझको सज्जन॥
खोजी हूँ उस ज्ञान का।
निर्विकार के ध्यान का॥

भटका भूला इधर-उधर।
फिरता हूँ संतत गुरुवर॥
बना लीजिये अधिकारी।
कृपा कीजिये तपधारी॥

दण्डी गुरुजी ने पूछा—"अब तक क्या-क्या पढ़ा है?"

दयानन्द बोले, कौमदी-सारस्वत आदि पढ़े हैं। यह सुनकर मुनिवर विरजानन्द ने कहा—

अहो कौमदी सारस्वत।
हुए लोग पढ़कर जड़वत्॥

जाकर यमुना के तट पर।
जल में इन्हें बहा सत्वर॥
पढ़ा लिखा सब विस्मृतकर।
तब आओ इसके भीतर॥

फिर कपाट खुल जावेंगे।
छिपे भेद दिखलावेंगे॥
रहे नहीं फिर कुछ संशय।
हो जावेगा स्वच्छ हृदय॥

अब प्रज्ञाचक्षु विरजानन्द ने प्रसन्न होकर कहा—

अब मैं तुझे पढ़ाऊँगा।
सब विद्या सिखलाऊँगा॥
सच्चा शिष्य बनाऊँगा।
हीरक सा चमकाऊँगा॥

एक आदर्श आज्ञाकारी शिष्य बनकर गुरुजी की सेवा करते हुए कड़े अनुशासन में रहकर दयानन्द आर्ष ज्ञान को प्राप्त कर पूर्णकाम हुए। गुरुजी से विदाई की वेला आ गई। थाली में कुछ लौंग डालकर गुरुचरणों में धरकर विदाई चाही। आशीर्वाद माँगा।

गुरुजी ने—इन लौंग की थाली को लौटाते हुए कहा कि मैंने इनके लिए तो तुम्हें नहीं पढ़ाया था। जो मैं मांगूँ सो भेंट कर सकते हो तो करो।

दयानन्द ने कहा—महाराज! मैं साधु हूँ! अकिञ्चन हूँ। क्या भेंट धरूँ? दण्डी गुरु ने कहा, "मानवता दुःख भोग रही है। मैं तुम से एक ही उपहार माँगता हूँ। आज व्रत लो और सद्धर्म वेद का प्रकाश फैलाने, अन्धकार का संहार करने के लिए अपना जीवन अर्पण कर दो। इस पवित्र कार्य के लिए सतत साधना करो।"

शिष्य ने गुरुजी को अपना जीवन भेंट कर दिया।

लेखक की अग्नि-परीक्षा—यह एक भयानक भेंट थी (जो गुरुजी ने मांगी), परन्तु शिष्य ने शीश नवाकर (गुरुजी की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए) गुरुजी से आशीर्वाद माँगा। ऋषि के समावर्तन संस्कार तथा गुरु दक्षिणा पर कई शिरोमणि विद्वानों, विचारकों व महाकवियों ने बहुत कुछ लिखा है। डॉ० विद्याभूषण जी विभु, श्री नारायणप्रसाद जी बेताब, आचार्य चमूपति, पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय की एतद्विषयक रचनाओं को उद्धृत करने का लोभ संवरण करने की अग्नि-परीक्षा इस लेखक को देनी पड़ रही है, परन्तु लेखक की और प्रकाशक की, पुस्तक के आकार की कुछ सीमाएँ हैं अतः पत्थर की छाती करके आचार्य चमूपति जी की रचना 'दण्डी की कुटिया' की अन्तिम चार पंक्तियाँ देकर हम इस विषय को यहीं विराम देते हैं।

लाखों झुक झुक सीस नवाते,
मैया तेरी कोख सुहागिन?
गौरव गीत गुञ्जाती गलियाँ,
मथुरा रति-राती रस रागिन!

—०—

पीड़ित-पुकार, व्याकुल विलाप,
सुन, सब आशान्वित-अभय किये।
कल्याण-पथ के पथिक बने,
कल्याण-पूर्ण उपदेश दिये॥
ओ टंकारा की ज्वलित ज्योति,
तू कभी नहीं बुझने वाली।
तुझ से जगमग यह जगती तल,
तुझ से भारत गौरवशाली॥

—डॉ० हरिशंकर शर्मा

सार्वजनिक जीवन का

वेदोदय काल

ऋषि दयानन्द १४ नवम्बर सन् १८६० को दण्डी विरजानन्द के चरणों में आये। वैशाख संवत् १९२० तदनुसार सन् १८६३ तक ढाई वर्ष जी जान से गुरुजी से विद्या प्राप्त की। गुरुजी का आशीर्वाद पाकर आपने वेदोद्धार व अन्धकार का संहार करने के लिए सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया। साथ कोई सगा था, न साथी। लक्ष्य सिद्धि के लिए पास साधन भी तो नहीं थे। योगियों की खोज में निकले तो योगाभ्यास निरन्तर करते रहे। मथुरा में भी यह अभ्यास जारी रहा। जब गुरु-कुटिया से प्रतिज्ञा करके अण्ड-बण्ड-पाखण्ड को चुनौती दी तो आपके पास केवल साधना की सम्पदा थी।

मथुरा से निकल कर ऋषिवर ने आगरा नगर में एकेश्वरवाद का सन्देश सुनाकर जन-जागरण का शंखनाद किया। यहाँ आपने श्री रूपलाल अग्रवाल की वाटिका में आसन जमाया। देवेन्द्रबाबू जी तथा कुछ अन्य लेखकों का मत है कि आगरा आगमन से पहले स्वामी जी एक मास तक कहीं अन्यत्र रहे फिर आगरा पधारे। यहाँ पं० सुन्दरलाल जी आदि चार सज्जन आपके सम्पर्क में आये। पं० सुन्दरलाल तथा बालमुकन्द जी ने आपसे अष्टाध्यायी पढ़ना आरम्भ किया। कुछ एक को नेती, धोती और न्यौली क्रिया सिखाई। योग विषय पढ़ने वाले कुछ भक्त भी यहाँ मिले।

यहीं ऋषि ने पहले सन्ध्या पुस्तक तैयार की और छपवाई। यहीं से निर्भीक साधु दयानन्द ने प्रतिमा पूजन का खण्डन आरम्भ किया। आपका उपदेश, सन्देश सत्य मानकर भी कई भक्त श्रोता विरोध के भय से मूर्तिपूजा को छोड़ने का साहस न बटोर सके। भागवत खण्डन पर भी यहीं एक पुस्तक लिखी थी। पत्र-व्यवहार द्वारा गुरुजी से शंका-निवारण किया करते

थे।

आगरा से प्रस्थान करके लश्कर ग्वालियर में संवत् १९२१ के कुछ मास डेरा किया। ग्वालियर महाराजा ने मुहूर्त निकलवाकर भागवत सप्ताह का आयोजन किया। दूर-दूर से विद्वान् बुलवाये गये। महाराज ने स्वामीजी के आगमन की सूचना पाकर अपने विद्वान् भेजकर श्रीमद्भागवत सप्ताह का महात्म्य पूछा। आपने हंसकर कहा—"**दुःख उठाने तथा क्लेश के अतिरिक्त कुछ फल नहीं है।**" और ऐसा ही हुआ। महाराजा यह सुनकर विवश थे। अब कथा कैसे रोकते? ऋषि दयानन्द ने गायत्री पुरश्चरण का सुझाव भी दिया था। ४ फरवरी सन् १८६५ को कथा का प्रथम दिन था। रात्रि नौ बजे कथा समाप्त हुई, परन्तु उसी रात्रि रानी का गर्भपात हो गया। इस कथा के आरम्भ होते ही एक के पश्चात् दूसरी दुर्घटना घट गई। विशूचिका के कारण प्रतिदिन लोग मरने लगे। स्वामी जी के डेरे के पास से मृतकों के शव श्मशान-भूमि ले जाये जाते थे। रोने-धोने और पीटने का शोर होता रहता था।

स्वामी जी ने **भागवत का खुला खण्डन ग्वालियर में ही सर्वप्रथम किया।**

जयपुर से ऋषि जी मई के अन्त में करौली पधारे। यहाँ धर्मचर्चा और वेद का स्वाध्याय होता रहा। अक्तूबर सन् १८६५ में जयपुर चले गये। जयपुर में भवानीराम वोहरा के उद्यान, धूलेश्वर महादेव के मन्दिर में आसन जमाया। कुछ लेखकों ने नन्दराम मोदी की वाटिका में भी डेरा लगाना लिखा है। यहाँ गोपालचन्द परमहंस ने जीव ब्रह्म के विषय में लिखित प्रश्न पूछे। उत्तर पाकर वह आपके पाण्डित्य पर मुग्ध हो गया और आपके पास ही डेरा लगा लिया।

महाराजा रामसिंह जी लक्ष्मणनाथ जी को जयपुर लाये थे। उनका स्वामी जी से सम्पर्क हुआ। पण्डितों से भी प्रश्नोत्तर हुए। पण्डित निरुत्तर होकर उठ खड़े हुए। उन्हें सत्यासत्य का निर्णय करने में कतई रुचि नहीं थी। जयपुर में ओसवाल वैश्यों के जति जी ने भी स्वामी जी को वार्त्तालाप करने के लिए सन्देश भेजा। जति जी ने जैनमत के अनुकूल आठ प्रश्न

लिख भेजे। स्वामी जी ने उनका समुचित उत्तर भेज दिया और जैन मत पर आठ प्रश्न भेजे, परन्तु जति जी ने कुछ भी उत्तर न दिया।

अचरोल के ठाकुर रणजीतसिंह जी को ठाकुर हमीर सिंह से स्वामी जी महाराज का परिचय प्राप्त हुआ। आपने ऋषि जी से भेंट करके उन्हें अचरोल आने का निमन्त्रण दिया। महाराज पैदल ही अचरोल पहुँच गये। ठाकुर जी के सब सन्देह दूर हो गये। आपने मूर्त्तिपूजा करनी छोड़ दी। पक्के एकेश्वरवादी बन गये। स्वामी जी ने यहाँ सन्ध्या, हवन और गायत्री की लहर चला दी। यज्ञोपवीत भी दिये गये। किसी को भी आपसे टकराने का साहस न हुआ।

ठाकुर रणजीत सिंह महर्षि के ऐसे पहले शिष्य थे जिसने ऋषि की विचारधारा में आस्था रखने के लिए अग्नि-परीक्षा देने का साहस दिखाकर महाराजा रामसिंह को कहा कि **आप मुझे राज्य से चाहें तो निष्कासित कर दें। मैं प्रतिमा-पूजक नहीं। स्वामी जी का पहला व पक्का शिष्य हूँ। यह ऋषि की पहली उपलब्धि थी।**

कुम्भ मेले पर प्रचार

मथुरा तथा मेरठ की यात्रा

स्वामी जी जयपुर होकर आगरा, मथुरा व मेरठ आदि नगरों में प्रचार करते हुए भ्रमण कर रहे थे। मथुरा में गुरुजी के अन्तिम बार दर्शन करके आशीर्वाद लिया। गंगाराम को आगरा में यह मार्मिक उपदेश दिया—**"न तो बुरा देखे और न ही बुरा करे, न बुरा सुने तथा न ही चित्तवृत्तियों को चलायमान होने दे प्रत्युत केवल ब्रह्म के ध्यान में रहे तो फिर कामदेव को बस परास्त ही जानो।"**

ऋषिवर १२ मार्च सन् १८६७ को हरिद्वार पधारे। स्वामी जी के साथ ७-८ व्यक्ति और थे। तब आप कौपीनधारी थे। इसी कुम्भ मेला पर आपने अपने डेरे पर **'पाखण्ड मर्दन'** पताका फहरा कर हलचल पैदा कर दी। भागवत खण्डन की सहस्रों प्रतियाँ वितरित की गईं। पुराणों का बहुत खण्डन किया। उपनिषदों की कथा करके सद्धर्म का सन्देश दिया।

आपका डेरा ऋषिकेश के मार्ग पर था। भारी संख्या में लोग गंगास्नान को आते थे। इन्हें सुनकर उनको पता लगा कि यह तो सब अविद्या का परिणाम है।

दादूपन्थी स्वामी महानन्द जी संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। आपने जीवन में प्रथम बार वेदों के दर्शन ऋषि जी के डेरे पर किये। ऋषि वेदों के अर्थ भी जानते हैं—इससे आप बहुत आनन्दित हुए।

काशी के विद्वान् स्वामी विशुद्धानन्द यजुर्वेद ३१.११ का अर्थ बताते थे कि ब्राह्मण परमेश्वर के मुख से और क्षत्रिय उसकी भुजाओं से, वैश्य जंघाओं से और शूद्र पाँवों से उत्पन्न हुए। ऋषि ने इसका प्रतिवाद करते हुए कहा कि मुख से तो खखार भी निकलता है। इस मन्त्र के वास्तविक अर्थ बताये कि ब्राह्मण वर्णों में मुख के सदृश है। चारों वर्णों के बारे मन्त्र के आशय को सुनाया तो बुद्धिमानों पर गहरा प्रभाव पड़ा, परन्तु पोंगापन्थी हिल गये। उन्होंने यह प्रचार किया कि स्वामी दयानन्द तो नास्तिक है। यह वेदों के अर्थों को बिगाड़ता है।

ऋषि ने संन्यासी, त्यागी, वैरागी, गुसाईं सब प्रकार के साधु देखे। सब पाखण्ड में डूबे पाये। ऋषि ने देश जाति की दुर्दशा देखकर सर्वस्व त्याग दिया। जो कुछ भी पास था पुस्तक, वस्त्र, पैसे सब वहाँ बाँट दिये। कहा जब तक आवश्यकताओं को न्यून नहीं करूँगा पूर्णतया स्वतन्त्र नहीं हो सकता। निर्भय हुए बिना खरी बात कहना सम्भव नहीं। केवल एक कौपीन धारण करके विचरण करने लगे।

हमारा महाराजा से क्या प्रयोजन?

जयपुर के कुछ पण्डित ऋषि की विद्वत्ता का लाभ उठाने के लिए उन्हें महाराजा रामसिंह से मिलवाना चाहते थे। कई बड़े लोगों के अनुरोध पर ऋषि महाराजा से मिलने को तैयार हो गये, परन्तु कुछ ब्राह्मणों ने कह दिया कि महाराजा भ्रमणार्थ बाहर गये हैं। आप फिर पधारना।

स्वामी जी महाराज वास्तविकता को ताड़ गये और बोले—"हमारा महाराजा से क्या प्रयोजन?"

अजमेर पुष्कर की ओर चल दिये

जयपुर से ऋषिवर अजमेर पुष्कर की ओर चल दिये। जहाँ-जहाँ गये कुरीतियों का निवारण करते, एक प्रभु की पूजा तथा सत्य शास्त्रों के अध्ययन की प्रेरणा देते रहे। असत्य मत खण्डन में निर्भय होकर लगे रहे। रामानुजियों के शरीर जलाने से स्वर्ग की प्राप्ति का खण्डन करते थे। **उनके श्लोक 'सप्ततनुः स्वर्ग गच्छति' का अर्थ करते हुए बताया कि व्रत, तप, नियम से शरीर को तपाये।** मन को जप आदि में लगाये।

पुष्कर में शिवदयाल ब्राह्मण को नगाड़ा कूटने पर कहते—"अरे चमड़ा कूटने से क्या लाभ है ?"

स्वामी जी ने अजमेर के जन मार्गों पर विज्ञापन लगवाकर पण्डितों को मूर्त्तिपूजा आदि विषयों पर शास्त्रार्थ का निमन्त्रण दिया। पण्डित स्वीकृति देकर भी शास्त्रार्थ करने नहीं पहुँचे।

सन् १८६६ की इसी अजमेर यात्रा के समय स्वामी जी महाराज ने पादरी ग्रे, पादरी राबसन तथा पादरी शूलब्रैड से विभिन्न विषयों पर शास्त्रार्थ किया। **ईसाइयों के साथ यह ऋषि का प्रथम शास्त्रार्थ था।** पादरी बहुत प्रभावित व प्रसन्न हुए। पादरी राबसन ने तो लिखकर दिया कि हमने जीवन भर संस्कृत का ऐसा प्रकाण्ड पण्डित नहीं देखा। मान्य डॉ० कुशलदेव जी का यह मत निराधार है कि प्रयाग में पादरी नीलकण्ठ शास्त्री से भेंट के पश्चात् ऋषि ने बाइबिल का ज्ञान प्राप्त किया। अजमेर का शास्त्रार्थ इसका अकाट्य प्रमाण है। पादरी नीलकण्ठ से वार्त्तालाप से डेढ़ वर्ष पूर्व ऋषि ने हुगली में पादरी डे से शास्त्रार्थ करके बाइबिल के अपने अथाह ज्ञान का परिचय दिया था।

अजमेर में कर्नल ब्रुक जिन्हें साधु वेश से ही घृणा थी—श्री स्वामी जी के तप, तेज तथा विद्या के कारण आपके प्रशंसक बन गये।

युग-निर्माण के लिए

गंगा-तट पर धूनी रमाई

हरिद्वार के कुम्भ मेला के पश्चात् ढाई वर्ष तक आपने ईश्वर तथा

उसकी वाणी के प्रचार के लिए घोर तपस्या व अथक कार्य किया। रामघाट, कर्णवास, अनूपशहर, सोरों, शाहबाज़पुर, ककोड़ा, कायमगंज, फ़र्रुखाबाद आदि छोटे-छोटे ग्रामों, कस्बों, नगरों में घूम-घूम कर जन-सम्पर्क करके एक ईश्वर की उपासना, सन्ध्या, गायत्री, यज्ञ, यज्ञोपवीत तथा वेद का प्रचार करते हुए युग-निर्माण में लगे रहे। अपने हाथ से लिख-लिख कर गायत्री मन्त्र सिखाते। अष्टाध्यायी का भी प्रचार किया। पुराणों व अन्धविश्वासों का निर्भय होकर खण्डन किया। भूत, प्रेत आदि से जनसाधारण को भयमुक्त करने में भी लगे रहे।

इसी क्षेत्र से वेदोदय हुआ। आर्यसमाजोदय तो सन् १८७५ में महानगरी मुम्बई में हुआ। ब्राह्मणेतर को भी ग्राम-ग्राम में यज्ञोपवीत देते रहे और नारी जाति को भी युगों के पश्चात् इसी क्षेत्र में वेदाधिकार देकर आपने युग पलट दिया। ठाकुर गोपालसिंह जी की नब्बे वर्षीय चाची बहुत सात्विक वृत्ति की साध्वी देवी थी। उसने ऋषि-दर्शन की चाह व्यक्त की, उपदेश सुना और गद्‌गद हो गई। ऋषि जी ने उसे गायत्री-जप की प्रेरणा दी। माता हंसा ठकुरानी जी को गायत्री जप का अधिकार दे कर ऋषि ने क्रान्ति का शंखनाद कर दिया।

वह टूटा जो था वेद विद्या पै ताला।
दयानन्द स्वामी! तिरा बोल बाला॥ —पं० चमूपति

बाल ब्रह्मचारी ने तप से इस क्षेत्र को सींचा। इस धरती से ऋषि को कई कर्मठ, सच्चे व पक्के शिष्य मिले। सब वर्गों के लोग आपके भक्त बने, परन्तु राजपूत तो जी जान से आपके मिशन के लिए समर्पित हो गये। ठाकुर भोपाल सिंह ने अन्त समय आपकी बहुत सेवा की। ऋषि ने इनके धर्मभाव को देखकर ठाकुर मुकन्दसिंह व ठाकुर भोपाल सिंह को अपने साहित्य के प्रसार का मुखतार आम बनाया। आचार्य उदयवीर, कुँवर सुखलाल व अमर स्वामी जैसे नर रत्न आपको इसी क्षेत्र से मिले। इस क्षेत्र में विरोध में भी कोई कमी नहीं रही। अनूपशहर में विष देने का षड्यन्त्र रचा गया। न्यौली क्रिया से विष बाहर निकाल दिया। विषदाता को क्षमाशील ऋषि ने क्षमा कर दिया। कर्णवास में राव कर्णसिंह ने तलवार

का वार किया। अनूपशहर में ही गंगा स्नान के मेले पर ठाकुर अमरसिंह के पिता ठाकुर टीकम सिंह ने विरोधियों को आप पर धूलि मिट्टी फैंकते देखा। पं० लेखराम आदि गवेषकों ने इस काल की घटनाओं की खोज तो बहुत की, परन्तु फिर भी पुरुषार्थ परमार्थ की प्रतिमा बाल ब्रह्मचारी दयानन्द की इन वर्षों की अनेक शिक्षाप्रद घटनाएँ संग्रहीत न की जा सकीं। आचार्य उदयवीर जी अपने जन्म-स्थल बनैल ग्राम में बाल्यकाल से ही सुनते आये कि बनैल के पास साबितगढ़ में भी ऋषि ने फेरी डाली थी। आगे चलकर यह ग्राम आर्यसमाज का गढ़ बन गया, **परन्तु किसी जीवनी लेखक ने ऋषि के यहाँ आने की चर्चा नहीं की।**

नदी तट पर रेती पर रातों नंगे सोकर बिताईं, पेड़ों के नीचे डेरा रहा, मन्दिरों में रहे, कौपीनधारी ब्रह्मचारी के लिए न जाड़ा, न गर्मी और न वर्षा। बिना बिस्तर के पड़े रहते थे। भोजन मिला तो कर लिया और गढ़मुक्तेश्वर में नाविक ने जो दिया सो उसी से तृप्त हो गये।

इस क्षेत्र में कई शास्त्रार्थ किये। पं० हीरावल्लभ ने सबके सामने वह सिंहासन जिस पर सब अटरा-पटरा रखा था, सब मूर्त्तियाँ उठाकर गंगा में फैंक दीं। सन् १८६७ के इस शास्त्रार्थ से ऋषि की विद्वत्ता की दूर-दूर तक धूम मच गई। गढ़िया में स्वामी कैलाश पर्वत ने प्रतिमा पूजन के खण्डन से रोका। स्वामी कैलाशपर्वत ने "**मूर्त्तिपूजा व मन्दिरों का सबसे बड़ा लाभ सैंकड़ों की आजीविका इसी से बनी है**"—यह बताया। ऋषि को पुराणों के खण्डन से भी रोका। ऋषि दयानन्द भय व प्रलोभन से सत्य का मण्डन और पाखण्ड का खण्डन छोड़ने वाले नहीं थे।

"Truth was dearer to him than name, fame and prestige." उस ऋषि को नाम से, प्रसिद्धि से और प्रतिष्ठा से सत्य कहीं अधिक प्यार था।

अम्बागढ़ में सोरों बदरिया के पं० अंगदराम से पाषाण-पूजा पर शास्त्रार्थ किया। सबके सामने पं० अंगदराम ने अपनी पं० शालिग्राम की मूर्ति गंगा में फैंक दी। उन्हें देखकर गुसाईं बलदेव गिरि ने भी अपनी

मूर्त्तियाँ गंगा में प्रवाहित कर दीं।

इतिहासकार डॉ० ईश्वरीप्रसाद ने लिखा है कि मन्दिरों में स्वर्ण मूर्त्तियाँ रखकर, उन्हें हीरे मोतियों के मुकुट पहनाकर हिन्दुओं ने लुटेरों से उनकी रक्षा का कुछ भी प्रबन्ध न किया। इतिहास से कुछ तो नहीं सीखा।

आज भी मन्दिरों से मुकट, सिंहासन व मूल्यवान् मूर्त्तियाँ चोर चुराकर ले जाते हैं। अन्न धन, रत्न भण्डार देने वाला भगवान् इनका क्या करेगा? भगवान् को खाते, पीते और कुछ लेते किसी ने कभी नहीं देखा। ऋषि की इस सीख से देश वासियों ने क्या सीखा? डॉ० राधाकृष्णन जी ने यथार्थ ही तो लिखा है—"A man has learnt from history that mankind has learnt nothing from history." अर्थात् मनुष्य ने इतिहास से बस यही तो सीखा है कि मनुष्य ने इतिहास से कुछ भी नहीं सीखा।

इन्हीं यात्राओं में एक बार ऋषि जी स्वामी कैलाशपर्वत से मिलने गये। बातचीत करते हुए स्वामी कैलाशपर्वत की कुटिया की ओर संकेत करते हुए आपने कहा—"कैलाशपर्वत इस कुटिया में किस प्रकार समा गया?"

संन्यासी चिदानन्द आगे-आगे और स्वामी जी पीछे-पीछे

यह संन्यासी मूर्त्तिपूजा सिद्ध करने सोरों में आ गया। ऋषि ने पत्र भेजकर उसे सत्यासत्य का निर्णय करने का निमन्त्रण दिया। न तो वह स्वयं आया और न ही ऋषि जी को निमन्त्रण भेजा। एक दिन गंगा की धार की ओर चिदानन्द जी के जाने की सूचना पाकर ऋषि दयानन्द ने उसका पीछा करते-करते उसे श्मशान के निकट जा पकड़ा। स्वामी जी ने कहा मूर्त्तिपूजा की पुष्टि में तेरे पास कौन-सा मन्त्र है? ऋषि घण्टा भर उसके साथ रहे, परन्तु वह बोला ही नहीं मानो कि उसके मुख को ताला लग गया।

सन् १८६८ में कासगंज होकर शहबाज़पुर पधारे। यहीं आपको दण्डी गुरु विरजानन्द जी के देह-त्याग का समाचार मिला। सुनकर बोले—**"आज व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया।"**

यहाँ भी गंगा पार से दो वैरागी साधु ऋषि का वध करने की योजना बनाकर पहुँचे। ठाकुर गंगासिंह जी को उन हत्यारों ने अपनी योजना बता दी। ठाकुर जी ने उन्हें फटकार लगाई। स्वयं चार व्यक्तियों को लेकर शस्त्र धारण करके ऋषि जी को मिलकर सारी बात बताई। स्वामी जी बोले—"इनका क्या सामर्थ्य है कि हमको मारें" परन्तु वह इतने से सन्तुष्ट न हुआ और रात भर वहीं सावधानी के लिए पहरा देता रहा।

हरि भजो सब छोड़ो धन्धा

शहबाज़पुर से ऋषि ककोड़ा मेला पर पधारे। वहाँ कुछ संस्कृत जानने वाले एक कायस्थ सज्जन गोविन्ददास से श्री स्वामी जी की भेंट हुई। यह व्यक्ति वैरागी होकर कुछ चेले संग लेकर सब को यह जाप करवाता था—

"हरि भजो सब छोड़ो धन्धा"

स्वामी जी ने उनसे पूछा—"यह कैसे सम्भव है ? सब सत्कर्म कैसे छुड़वा सकते हो ? किस-किस को छोड़कर हरि नाम भजें ? भोजन को ? अथवा जिह्वा को ? और किस-किस को ?"

धारा प्रवाह संस्कृत बोलते हुए ऋषि जी ने उसके पाखण्ड मत का खण्डन आरम्भ कर दिया। वह सर्वथा निरुत्तर होकर मौन बैठा रहा। हिन्दू समाज को निकम्मा, प्रमादी और अकर्मण्य ऐसे-ऐसे तथाकथित दार्शनिकों ने बना दिया। "जगत् मिथ्या है"—यही घातक सीख कुछ कम नहीं थी कि '**हरि भजो सब छोड़ो धन्धा**' की रट लगाने वाले कई बाबे और पैदा हो गये।

कायमगंज में पादरियों से शास्त्रार्थ

हम पीछे भी विद्वान् बन्धु श्री डॉ० कुशलदेव जी के इस कथन का सप्रमाण प्रतिवाद कर चुके हैं कि ऋषि जी ने प्रयाग में पादरी नीलकण्ठ से वार्त्तालाप के पश्चात् बाइबिल का अध्ययन किया। पादरी नीलकण्ठ से तो महाराज का मिलन सन् १९७४ में हुआ। इससे पूर्व स्वामी जी कई बार पादरियों से शास्त्रार्थ कर चुके थे। विक्रम संवत् १९२५ में स्वामी

जी महाराज के साथ शास्त्रार्थ करने के लिए अनलन पादरी कई गोरे व देशी ईसाइयों को साथ लेकर कायमगंज में उनके डेरे पर आये।

वे आकर उद्यान की ऊँची डौल पर बैठ गये। स्वामी जी का आसन उनसे नीचा था। लोगों को यह बुरा लगा। वे उन्हें उठाने लगे तो शिष्टता विनम्रता की मूर्त्ति श्री स्वामी जी ने झट से ऐसा करने से रोकते हुए कहा— **"बहुत से पक्षी भी तो ऊपर पेड़ों पर बैठे हैं।"**

पादरियों ने प्रश्न किया—"हम जो पापी हैं हमारे पाप क्षमा कैसे होंगे?"

स्वामी जी ने संस्कृत में उत्तर दिया। पं० मोहनलाल ने उसका अनुवाद करके सुना दिया—"पाप क्षमा नहीं हो सकते।"

बात वास्तव में यह है कि सब मत-पन्थ पाप क्षमा करवाने का ढोल पीटते हैं। पापों से बचने की शिक्षा पर बल नहीं दिया जाता। वैदिक धर्म यह मानता है—

"बोया हुआ बीज तथा किया गया कर्म कभी निष्फल नहीं जाता।"

यह मार्ग कठिन है सो लोग पगडण्डी (Short cut) खोजते रहते हैं।

शिवलिङ्ग-पूजा का विधान

किशनसिंह बहुश्रुत नाम के एक सज्जन महाराज के दर्शनार्थ पधारे। आपने स्वामी जी से प्रश्न किया—"आप तो शिवलिङ्ग पूजा से रोकते हैं, परन्तु शास्त्रों में इसका विधान है?"

स्वामी जी ने उत्तर में कहा—"यह कैसी लज्जा की बात है कि शिवजी कैलाश पर निवास करते हैं। जब लिङ्ग यहाँ आ गया तो क्या शिवजी वहाँ पर इसके बिना रहता है?"

यह उत्तर सुनने में एक बार तो सुकठोर लगता है, परन्तु है तो खरा सत्य। सत्य कथन सुनने वाले विरले ही होते हैं।

यहाँ श्री महाराज ग्राम में भिक्षा के लिए नहीं जाते थे। जो कुछ वहाँ

मिल जाता, स्वीकार कर लेते। स्वल्प-सी निद्रा उनका स्वभाव था।

फ़र्रुखाबाद की स्मरणीय घटना

संवत् १९२५ के पौष मास के आरम्भ में ऋषि फ़र्रुखाबाद पधारे। इस यात्रा की एक स्मरणीय घटना 'साधों का भोजन ग्रहण करना है?' स्वामी जी ने सुखवासीलाल साध द्वारा भेंट किया गया कड़ी-भात बहुत प्रेम से सेवन किया। ब्राह्मणों ने उन्हें ऐसे करते देखा तो कहा—"आप भ्रष्ट हो गये कि साध का भोजन सेवन कर गये।" ऋषि ने कहा—"भोजन दो प्रकार से भ्रष्ट होता है। १. दुःख देकर हिंसा से प्राप्त किया गया भोजन, २. कोई मलीन वस्तु पड़ने से—अभक्ष्य पदार्थ होने से।"

"साधों की परिश्रम की कमाई से, उत्तम पदार्थों से बनाये गये भोजन में कोई दोष नहीं।" ऋषि का यह उत्तर पाकर सब जन मौन हो गये।

फ़र्रुखाबाद क्षेत्र में साध लोग कृषि कार्य करने वाले गृहस्थी हैं। इन्हें पौराणिक ब्राह्मणों ने अस्पृश्य घोषित कर रखा था। **श्री स्वामी जी ने अपने आचरण से अस्पृश्यता के जातीय महारोग पर करारी चोट मारकर एक और क्रान्ति कर दी।**

यहाँ नगर के सब पण्डितों ने स्वामी जी महाराज से २५ प्रश्न किये। ऋषि जी ने बोलकर उत्तर लिखवा दिये। लिपिबद्ध करने वाले पोप ने एक प्रश्न के उत्तर में गड़बड़ कर दी। भारत सुदशा प्रवर्त्तक में ये उत्तर वैसे ही छप गये। यहाँ हम केवल एक प्रश्न—मनुष्य के क्या कर्त्तव्य हैं? का उत्तर देते हैं। ऋषि जी ने कहा—"जैसे ईश्वर दयालु है, सब पर दया करता है, मनुष्य को भी सब पर दया करनी चाहिये। ऐसे ही परमेश्वर के गुण जो वास्तव में उत्तम हैं, धारण करने का अभ्यास करना चाहिये जिससे अन्ततः ईश्वर-प्राप्ति हो।"

भक्तों के बहुत अनुरोध करने पर भी आप नगर में नहीं गये। विश्रान्त घाट पर ही डेरा रखा। विभिन्न मत-पन्थों से प्रश्नोत्तर शास्त्रार्थ होते रहे।

इस प्रवास की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना यह है कि विद्याविहीन नामधारी ब्राह्मणों का ऋषि जी ने जब खण्डन किया तो अपनी आजीविका

जाने के भय से वे ऋषि के घोर-विरोधी हो गये। मेरठ के पं० श्रीगोपाल शास्त्री जी को शास्त्रार्थ करने के लिए बुलाया गया। विषय वही पुराना रखा गया—"मूर्त्तिपूजा।" कहानी लम्बी है। सार रूप में इतना लिखना ही पर्याप्त है कि वातावरण को विषाक्त बनाकर पं० श्रीगोपाल शास्त्री जी ने धनराशि व्यय करके, काशी के पण्डितों को भारी दक्षिणा देकर मूर्त्तिपूजा के पक्ष में एक व्यवस्था प्राप्त कर ली। काशी के पं० राजाराम के शिष्य पं० सालिग्राम जी ने यह व्यवस्था दिलवाने का सब उद्यम किया।

इस पर स्वामी विशुद्धानन्द, पं० राजाराम, पं० बालशास्त्री आदि १५ पण्डितों के हस्ताक्षर थे।

पं० श्रीगोपाल शास्त्री को बहुत कहा गया कि स्वामी जी के डेरे पर ऊपर चलकर गम्भीरता से शास्त्रार्थ करो। ऋषि के बहुत कहने पर भी वह उनके पास नहीं गया। वह भीड़ में शास्त्रार्थ को तमाशा बनाना चाहता था। इससे दंगा तो हो जाता, सत्यासत्य के निर्णय का तो प्रश्न ही नहीं था।

अंधविश्वासों में जीने पलने वाले श्रीगोपाल शास्त्री जी ने तब कहा था, स्वामी जी ने विश्रान्त कील गाड़ दी है। हम ऊपर गये तो वह जीतेंगे और वह नीचे आवें तो वह हार जाएंगे। अतः वह ऊपर नहीं गया। नगर का कोई भी प्रतिष्ठित पण्डित उसके साथ नहीं था।

कलेक्टर ने फ़ौजदार को भेजा। उसने स्वामी जी को बुलवाया। स्वामी जी ने कहा—"हम किसी के चाकर नहीं।" कोतवाल ने स्वयं ऊपर जाकर श्री महाराज से कहा, "बाबा जी यह क्या बखेड़ा है?" स्वामी जी ने समुचित उत्तर दिया, "हम तो अपने डेरे पर बैठे हैं।" बखेड़े की जाँच आप करिये कि कौन करवा रहा है?"

प्राणघातक आक्रमण करने की यहाँ भी कई योजनाएँ बनीं। बात बिगड़ती देखकर श्रीगोपाल शास्त्री फ़र्रुखाबाद छोड़कर चला गया।

इस घटना के कोई दस वर्ष पश्चात् श्रीगोपाल शास्त्री ने अपने त्रिभाषी ग्रन्थ 'वेदार्थ प्रकाश' में एक फ़ारसी कविता में महर्षि दयानन्द जी को पवित्रात्मा श्रेष्ठ स्वभाव का पण्डित बताया। सभाओं में सबकी

बोलती बन्द कर देने वाला बेजोड़ विद्वान् लिखा। कोई उनके सामने टिक न सका। उस मधुरभाषी, निर्मल हृदय, निर्मल बुद्धि महामानव का सच्चा नाम दयानन्द है।[१]

यह भी स्मरणीय तथ्य है कि पं० सालिग्राम भी अजमेर में आर्यसमाज से जुड़ गया। यह ऋषि की दिग्विजय है। **पं० सालिग्राम जिसने काशी से 'व्यवस्था' क्रय करके दी वह भी ऋषि भक्त बनकर वैदिक मिशन का सहयोगी बन गया।**

हलधर ओझा से शास्त्रार्थ

फ़र्रुखाबाद से जलालाबाद आदि होते हुए श्री स्वामी जी जुलाई १८६९ में कानपुर पधारे। सारे नगर में आपकी धूम मच गई। 'शोलाय तूर' नाम के पत्र में आपके सम्बन्ध में छपा कि आप प्रतिमा-पूजन का कड़ा विरोध करते हैं और इसे वेद विहित नहीं मानते। ३१ जुलाई सन् १८६९ को संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् पं० हलधर ओझा से प्रतिमा-पूजन विषय पर आपका शास्त्रार्थ हुआ। घाट पर भारी भीड़ एकत्र हो गई। **हलधर ओझा तथा पं० लक्ष्मण शास्त्री के अतिरिक्त कोई चार सौ ब्राह्मण वहाँ उपस्थित थे।** इन सबसे टक्कर लेने के लिए आदित्य ब्रह्मचारी लंगोटबन्द संन्यासी अकेला ही शास्त्रार्थ समर में निर्भय होकर खड़ा था। बीस-पच्चीस सहस्र का जन समुद्र वहाँ उमड़ पड़ा। वृक्षों, घाटों, नौकाओं, छतों, फ़र्श—जिधर देखो मनुष्य ही मनुष्य दिखाई दे रहे थे। इस शास्त्रार्थ के मध्यस्थ संस्कृत के विद्वान् सहायक कलेक्टर श्री थेन थे। लाला लाजपतराय व मेहता राधाकिशन ने इसका नाम W. Thaira (थैरा) लिखा है।

आपने निर्णय दिया—"Gentlemen—At the time in question I decided in favour of Dayanand Saraswati Fakir, and I believe his arguements are in accordance with the Vedas. I

१. महर्षि दयानन्द सरस्वती : सम्पूर्ण जीवन चरित्र, भाग-१, पृष्ठ २०८ पर यह कविता दी गई है। वहाँ सविस्तार सब कुछ देखें।

think he won the day. If you wish it I will give you my reasons for my decision in a few days."

Yours Obediently,

Thein Cawnpur

सज्जनवृन्द! मेरी सम्मति में शास्त्रार्थ के समय स्वामी दयानन्द सरस्वती फ़कीर की विजय हुई। उनके तर्क वेदानुकूल थे। यदि आप चाहें तो मैं अपनी व्यवस्था की पुष्टि में कुछ दिनों में प्रमाण भी दे दूँगा।

स्मरण रहे कि शास्त्रार्थ की समाप्ति पर थेन महोदय ने स्वामी जी से पूछा—"आप किसको मानते हैं?"

स्वामी जी ने उत्तर में कहा—"एक ईश्वर को।"

इस शास्त्रार्थ के पश्चात् पं० हलधर ओझा ने नागरी लिपि में एक विज्ञापन निकालकर जनता से यह विनती की कि स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार बहुत लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इत्यादि जो देव-मूर्तियाँ प्रवाहित कर देते हैं यह अनुचित है। **जो लोग स्वामी दयानन्द के विचार को अपनायें वे इन्हें मन्दिर में पहुँचा दें अथवा हमें सूचित करें। हम उन्हें उठवा लेंगे अन्यथा उन्हें पाप लगेगा।**

यह आशय है उस विज्ञापन का। इसे पढ़कर अनायास मुख से निकलता है—

धूम ऐसी मचाई दयानन्द ने।
वेद रीति चलाई दयानन्द ने॥

यह कार्य मोह के हैं

अब तो देश भर में अनेक मठों व डेरों का संचालन मठाधीशों के भांजे-भतीजे ही करते हैं। कानपुर में ऋषि जी से पं० हृदय नारायण व मुंशी गंगा सहाय ने कहा—"जब आप यहाँ से जाने लगें तो बतला देना।"

वीतराग संन्यासी ने कहा—"**ऐसा नहीं हो सकता अन्यथा हम परिवार का परित्याग क्यों करते? यह कार्य इसलिए नहीं कि अमुक ठीक-ठाक रहना तथा हमको मिलते रहना। यह कार्य मोह के हैं।**

हम ऐसा नहीं करेंगे।''

ऋषि एक पुराना लंगोट बांधे, शरीर पर रेत रमाय चल पड़े। रसोइया तथा भक्तजन सायंकाल तक प्रतीक्षा करते रहे।

ऋषि के ऐसे प्रसंग पढ़कर प्रसंगवश हमें एक साधु की विदाई की घटना याद आ गई। सन् १९६२ की घटना होगी। धूरी (पंजाब) के आर्यसमाज में अजमेर से आये एक बाबा जी की कथा थी। कथा के अन्तिम दिन भूमिका बांधकर महाराज जी ने सब श्रोताओं को अपने पीछे यह गीत गाने को कहा—

'साधो अब बिछड़न की वेला'

कई भावुक श्रोताओं के नयन सजल हो गये। बाबा जी यही चाहते थे। इसके विपरीत जब कभी विदा करते कहीं श्रद्धालुओं के अश्रुकण गिरते देखे तो ऋषि जी कहा करते थे—**''हमने आपको रोने के लिए तो उपदेश नहीं दिया था!''** यह है संन्यास मर्यादा!

किया जिसने संन्यास का रुतबा आला।
दयानन्द स्वामी! तिरा बोल बाला॥

—०—

नवयुग की आहट

अगस्त १८६९ के अन्त में स्वामी जी महाराज शिवराजपुर आये। यहाँ के निवास काल में किसी से शास्त्रार्थ भी हुआ था। यहाँ से चलकर मिर्ज़ापुर में एक-दो दिन डेरा लगाया। तत्पश्चात् प्रयाग पधारे। यहाँ के एक ब्राह्मण पं० शिवसहाय ने वाल्मीकि रामायण पर एक टीका लिखी थी। ऋषिजी ने किसी से कहा—"यह टीका दिखाओ।" उसने यह टीका उपलब्ध करवा दी। अब कहा—"टीकाकार से मिलवाओ।"

वह मिलने आ गया। उसे उसकी दोषयुक्त टीका के कुछ दोष बताये। इस पर वह शास्त्रार्थ करने लगा तो निरुत्तर होकर गंगा के तीर-तीर काशी को चल पड़ा। पीछे-पीछे सत्यान्वेषी दयानन्द भी हो लिये। वे उसे सत्यासत्य को पूरा ज्ञान करवाना चाहते थे।

रामनगर में प्रचार की धूम

उसका पीछा करते हुए महर्षि रामनगर (काशी) पहुँच गये। राजा के उद्यान के निकट रेत पर मिट्टी का एक ढेला सिर के नीचे रखकर सो गये। प्रात: समय लोग तेजस्वी प्रतापी महात्मा के दर्शनार्थ आये तो आपने शिवसहाय की टीका का खण्डन किया। राजभवन के बाहर जो कोई मिलता उसे कहते—"जो भीतर जा छिपा है उसे बाहर निकालो।" शिवसहाय राजा से अनुमति लेकर घर लौट गया।

आपने अपने सत्योपदेशों से अनेक लोगों के हृदय यहाँ जीत लिये। बाबू अविनाशी लाला, महात्मा ज्योतिस्वरूप उदासी तथा मुंशी हरबंसलाल से यहीं पहली भेंट हुई थी। संन्ध्या, गायत्री, ईश्वर प्रार्थना, योग, सत्यभाषण, सद्व्यवहार के लिए सबको प्रेरणाएँ देते। प्रतिमा-पूजन के खण्डन में प्रबल प्रमाण व युक्तियाँ देते। कभी कबीर जी तथा बाबा नानक ने मूर्त्तिपूजा का अच्छा खण्डन किया था। कबीर जी का तो काशी से निकट का सम्बन्ध रहा था, परन्तु इस कुरीति को चुनौती देकर स्वामीजी ने तो काशी

की नींव ही हिला दी। जहाँ हर कंकर शंकर माना जाता था वहाँ उन्नीसवीं शताब्दी का मूर्त्तिपूजा का सबसे बड़ा विरोधी निर्भय होकर पाषाण पूजकों को शास्त्रार्थ के लिए ललकार रहा था। उसकी हुँकार दहाड़ सुनकर सब पण्डितों के दिल दहल गये, परन्तु सामने आने का साहस किसी में नहीं था। फ़र्रुखाबाद व कानपुर के शास्त्रार्थों के समाचार काशी वालों ने अवश्य सुन रखे थे। **श्रीगोपाल जी ने यहीं से तो व्यवस्था क्रय की थी।**

गोरक्षा का प्रचार

स्वामी जी महाराज गाय के दूध तथा गोरक्षा से जगत् का उपकार बताते थे। यहाँ यह स्मरण रहे कि डॉ० जे० जार्डन्स ने अपने 'ऋषि जीवन' में यह लिखा है कि कोलकाता की आर्य सन्मार्ग संदर्शिनी सभा में अपने विरुद्ध दी गई व्यवस्था के सम्भावित विपरीत प्रभाव को निरस्त करने के लिए ही ऋषि जी ने गोरक्षा आन्दोलन छेड़ा। यह उनकी एक चाल (Policy) थी। यह एक भ्रामक विचार व कोरी कल्पना है। **ऋषि ने क्या गुरु की कुटिया से विदाई लेते ही अजमेर में गोरक्षा के लिए आवाज़ नहीं उठाई थी?** कोलकाता की सभा से १२ वर्ष पहले यह देखिए ऋषि रामनगर काशी में भी गोमाता की रक्षा के लिए हृदय की गहरी गहराइयों से गुहार लगाते हैं।

राजा ईश्वरी नारायण सिंह दंग रह गये

यहीं रामनगर में ही महात्मा जवाहरदास जी से प्रथम भेंट हुई। राजा ईश्वरीनारायणसिंह को श्री महाराज के आगमन की सूचना मिली। यह भी पता चला कि वे मूर्त्तिपूजा का खण्डन करते हैं। राजा ने ऋषि जी को बुलवाया, परन्तु वे नहीं गये। गंगा के तट पर रेती पर आसन लगा लिया। राजा ने कर्मचारी भेजे। भोजन की व्यवस्था करने को कहा। उनके लिए बढ़िया पश्मीने का अलवान भी भेजा। उनके एक कर्मचारी चौबे ने पुनः महाराज जी को निमन्त्रण दिया। स्वामी जी का फिर वही उत्तर था— **"हम नहीं जाएंगे। यदि उनकी इच्छा हो तो यहाँ आवें तथा अपनी सन्तुष्टि करलें।"**

तिरे रोब ने रौंद राजों को डाला।
दयानन्द स्वामी! तिरा बोल बाला॥

आधुनिक युग में राजा महाराजाओं के वैभव तथा सुख-सुविधाओं की उपेक्षा करने वाला पहला महामुनि विरक्त शिरोमणि दयानन्द ही था।

यह तो लोक रीति चली आती है। करते जाओ

गोघाट पर स्वामी निरञ्जनानन्द से महाराजा ने कहा—"स्वामी दयानन्द कहता है वेद में मूर्तिपूजा व रामलीला नहीं। यह क्या बात है?" स्वामी निरञ्जनानन्द का उत्तर था—"वेद में तो कहीं नहीं, परन्तु लोकरीति चली आती है। करते जाओ।"

स्वामी निरंजनानन्द पहले व्यक्ति थे जिन्होंने शिवजी के त्रिशूल पर खड़ी काशी नगरी में यह कहने का साहस तो किया कि स्वामी दयानन्द का यह कथन सत्य है कि वेद में तो मूर्त्तिपूजा व रामलीला कहीं नहीं, परन्तु लोकरीति चली आती है। करते जाओ।

पाठकवृन्द! यह नवयुग की आहट थी। सब जान गये कि अब अन्धेरी रात जाने वाली है। प्रभात आकर रहेगी। अन्धकार-अन्धविश्वास को चीरने वाला तपस्वी वेदवेत्ता सोने वालों को झकझोर कर जगा रहा था।

फ़र्रुखाबाद में शास्त्रार्थ का शोर तो बहुत मचाया गया, परन्तु शास्त्रार्थ के लिए सामने कोई न आया। इतिहास की भाषा में कहना हो तो हम कहेंगे कि ऋषि के लिए यह घटना—'A victory without a war' थी अर्थात् यह विजय बिना लड़े ही झोली में आ गई। अब ऋषि काशी में निर्णायक युद्ध लड़ने का दृढ़ निश्चय कर चुके थे।

स्वामी जयकार तेरा

राजा ईश्वरीनारायणसिंह ने फिर भी स्वामी जी को रामलीला में सम्मिलित होने का निमन्त्रण दिया तो आपने अस्वीकार करते हुए कहा—**"यह संन्यासियों का, भले मनुष्यों का काम नहीं"।**

राजा महोदय का दूसरा भाई वैरागी था। वह बड़ा पक्षपाती व मतान्ध

था। वह ऋषि का घोर विरोधी था। उसने पण्डितों पर दबाव बनाया कि येन केन प्रकारेण मूर्त्तिपूजा की पुष्टि करो। नर नाहर दयानन्द ब्रह्मचारी का सामना कौन करे ?

एक बार फिर राजा की विनती ठुकरा दी

२२ अक्तूबर १८६९ को ऋषि जी काशी को चलने लगे तो राजा ने कहला भेजा कि १. हमारी नौका में बैठकर गंगा पार काशी चलो। २. हमारे उद्यान में उतरो। यतिराट् दयानन्द ने महाराजा की ये दोनों बातें अस्वीकार कर दीं और अपने आप काशी चले गये। **पग-पग पर प्रभु प्रिय दयानन्द स्वामी नामी वेदरक्षक ने अपने पग-चिह्न छोड़कर अपने शिष्यों के चलने के लिए मर्यादा की एक पक्की सड़क बना दी।**

काशी आगमन

काशी नगरी संस्कृत विद्या का केन्द्र रहा है। यह पौराणिकता का सबसे बड़ा गढ़ है। पुराणों में इसका बहुत महात्म्य है। शैव लोग इसके महात्म्य का वर्णन करते नहीं थकते। पुराणपन्थी काशी में मरने से मोक्ष की प्राप्ति मानते हैं। गंगा-स्नान से तो मोक्ष मिलता ही है। मुक्ति का इससे सस्ता उपाय भी क्या कहीं है ? यदि कोई कमी थी तो काशी-करवता से पूरी कर ली जाती थी। करवत पर चढ़कर अनेक अन्धविश्वासी हिन्दू कटकर मोक्ष-प्राप्ति की इच्छा से प्रतिवर्ष अपनी जानें देते थे। शाहजहाँ के काल में इस पर प्रतिबन्ध लगा, परन्तु उसके पश्चात् यह प्रथा पुनः चालू हो गई। हिन्दू अपने आप कट-कट कर मरें शासकों का हित इसी में था। अंग्रेज़ों ने १७९५ में फिर से इस क्रूर अमानवीय कुरीति को कानून बनाकर निष्प्रभावी बना दिया।

ऋषि दयानन्द ने जब वेदोद्धार व देश सुधार के लिए जीवन अर्पित किया तो गम्भीर विचार करके वे इस परिणाम पर पहुँचे कि हिन्दुओं की सब कुप्रथाओं, कुरीतियों व अन्धविश्वासों को काशी से ही खाद पानी मिलता है, अतः वेदोदय के लिए सद्धर्म के प्रचार के लिए काशी को जीतना आवश्यक है। मूर्त्तिपूजक महादेव को काशी का राजा, ढूंढीराज

गणेश को उसका कोतवाल तथा लट्ठधारी भैरव को इसका प्रहरी मानते हैं। आश्चर्य तो इस बात पर होता है कि किसी हिन्दू की समझ में कभी भी यह बात न घुस पाई कि इन सबके होते हुए फिर औरंगज़ेब ने विश्वनाथ मन्दिर को कैसे तोड़-फोड़ दिया ?

ऋषि दयानन्द ज्ञान अञ्जन देकर काशी वालों की—समस्त हिन्दू समाज की आँखें खोलने के लिए काशी पर चढ़ाई करके दम्भ दुर्ग को ढहाने आ ही गये। रामनगर में कुछ दिन लगाकर और फिर काशी में डेरा डालकर श्री स्वामी जी ने काशी वालों की विद्या पाण्डित्य को टटोला व तोला और काशी वालों ने भी अपने चेले चांटे भेज-भेज कर स्वामी दयानन्द जी के विद्या ज्ञान की थाह पाने के भरपूर प्रयास किये। ऋषि की हत्या के यहाँ भी षड्यन्त्र रचे गये। विष देने के भी प्रयास हुए। सब ऐसी घटनाएँ न देकर हम उसी मुख्य विषय की चर्चा पर आते हैं जिसके लिए सन् १८६९ की ऋषि की काशी-यात्रा इतिहास में प्रसिद्ध है।

१६ नवम्बर मंगलवार का वह ऐतिहासिक दिन भी आ गया जब काशी के सैंकड़ों पण्डितों से जिनकी पीठ पर काशी का असहाय राजा ईश्वरीनारायण तथा काशी के जाने-माने सब उपद्रवी गुण्डे थे, ये सब एक ओर थे और दूसरी ओर से प्रभु की अमर वाणी वेद का नामलेवा एकेश्वरवादी संन्यासी दयानन्द प्रतिमा-पूजन विषय पर शास्त्रार्थ करने के लिए आमने सामने हुए।

यहाँ सुप्रसिद्ध आर्य दार्शनिक पं० गगाप्रसाद जी उपाध्याय के शब्दों में ऋषि की काशी पर इस चढ़ाई का वर्णन करने का लोभ संवरण नहीं किया जा सकता। "Tuesday the 16th of November 1869 will go down to posterity as a historic day when the great Shastraratha took place. It reminds one of the meeting at Worms of Martin Luther and the learned representatives of the Pope of Rome on this very point of idolatory, with, of course, one difference. At Worms Martin Luther was called by warrant to clear his position before the learned judges of Christendom. Here Svami Dayananda had gone on his

own accord to face the lion in his den and to bend him to the knees."[१]

अर्थात् मंगलवार १६ नवम्बर १८६९ का दिन भावी पीढ़ियों द्वारा ऐतिहासिक दिन के रूप में स्मरणीय रहेगा जबकि ऐतिहासिक काशी शास्त्रार्थ हुआ था। यह शास्त्रार्थ इसी मूर्त्तिपूजा विषय पर मार्टिन लूथर तथा रोम के पोप के विद्वान् प्रतिनिधियों की सभा की भी याद दिलाता है। परन्तु एक भेद के साथ, वह यह कि वर्म्ज़ में मार्टिन लूथर को आदेश-पत्र भेजकर ईसाइयत के विद्वान् न्यायाधीशों के सामने स्पष्टीकरण देने के लिए बुलवाया गया जबकि वहाँ स्वामी दयानन्द अपने आप सिंह को घुटनों के बल झुकाने के लिए उसकी माँद में स्वयं पहुँच गये।

पुस्तक के आकार व पृष्ठ संख्या को देखते हुए हम यहाँ पूरा शास्त्रार्थ तथा उस समय घटी घटनाओं को नहीं दे सकते। पाठक ऋषि के बृहत् जीवन चरित्र में यह पूरी जानकारी ले सकते हैं। निम्न बातें तो सबके सामने स्पष्ट ही है। ऋषि को सहायता देने के लिए तो दूर उनके किसी प्रेमी शुभचिन्तक को भी उनके समीप न बैठने दिया गया।

एक समय में एक ही बोलेगा। इस नियम की भी धज्जियाँ उड़ाई गईं। बिना अध्यक्ष की अनुमति के जिसके जी में जो आया वह बोलने लगता था।

महाराजा का व्यवहार सर्वथा पक्षपातपूर्ण था

मुख्य विषय को छोड़कर काशी के पण्डित विषयान्तर होकर अन्य-अन्य विषयों को उठाकर अपनी जान छुड़ाने में लगे थे। **प्रकाश की व्यवस्था किये बिना जानबूझकर संध्या समय शास्त्रार्थ रखा गया।**

शास्त्रार्थ का विषय था 'वेद में प्रतिमा-पूजन नहीं' यदि है तो इसका प्रमाण दो। पण्डितों ने ऋषि जी से प्रश्न पूछा—वेद में 'प्रतिमा' शब्द है अथवा नहीं?

स्वामी दयानन्द जी ने कहा—'प्रतिमा' शब्द तो है। पण्डितों की

१. द्रष्टव्य, Philosophy of Dayanand By Pt. Gangaprasad, page 15, para 18.

कुटिलता व अज्ञान देखिए कि 'प्रतिमा' शब्द वेद में है इसी से गद्‌गद् होकर वे विजयी होने का दम्भ करते हैं। **वेद में तो 'दस्यु' शब्द भी है। 'तम' शब्द भी है, 'अनृत' भी है, 'तस्कर' भी है तो क्या वेद इनको** धर्मविहित मानता है?

विशुद्धाननद स्वामी ने ऋषि से पूछा—**"वेद किस ईश्वर से उत्पन्न हुए?"**

ऋषि ने समुचित उत्तर दिया, क्या ईश्वर अनेक हैं? वैसे तिलक, कण्ठीधारी पौराणिक अनेक भगवानों को ही मानते हैं। परन्तु शास्त्रार्थ का तो यह विषय नहीं था। पण्डितों व राजा ने धांधली करके ताली पीटकर ऋषि की पराजय व अपनी विजय की घोषणा तो करली। ऋषि पर गुण्डों से आक्रमण भी करवा दिया। यदि रघुनाथ कोतवाल सजग होकर अपना दायित्व न निभाते तो उसी दिन ऋषिवर को मार दिया गया होता। कोलकाता की सभा में १२ वर्ष पश्चात् तक भारत भर के पौराणिक वेद से 'प्रतिमा-पूजन' का कोई भी प्रमाण न दे सके।

पं० चमूपति जी ने इस ऐतिहासिक शास्त्रार्थ पर यथार्थ ही तो लिखा है—

दलीलों पै काशी को जिसने उछाला।
दयानन्द स्वामी! तिरा बोल बाला॥

अब हम काशी शास्त्रार्थ पर किसी आर्यसमाजी की कोई टिप्पणी न देकर आर्यसमाजेतर सज्जनों तथा कुछ सनातनधर्मी पण्डितों के मत का सार देकर इस प्रकरण को समाप्ति की ओर ले जाते हैं।

गोस्वामी घनश्याम जी मुलतान—आप पं० बालशास्त्री के शिष्य थे। आप गोस्वामी गोवर्धनदास तथा चाँदूमल खत्री मुलतानी के साथ प्रयाग के सं० १९३६ के कुम्भ के पश्चात् काशी जाकर बाल शास्त्री से मिले। उनसे सीधा प्रश्न पूछा कि सन् १८६९ के आपके व स्वामी दयानन्द के मध्य हुए शास्त्रार्थ में किस की जय हुई थी? तब बड़ी विनम्रता से बाल शास्त्री जी बोले—**"हम गृहस्थी तथा वे यति संन्यासी हमारे पूज्य, उनका हमारा शास्त्रार्थ कहाँ बन सकता था?"**

आर्यसमाज के महाविद्वान् स्वामी वेदानन्द जी आपके शिष्य रहे। उनको व अपने सब शिष्यों को भी यही बताया करते थे।

पं० राजाराम शास्त्री काशी के मूर्धन्य विद्वान् थे। आपके शिष्य पं० सालिग्राम जी अजमेर में सर्विस करते थे। आप शास्त्रार्थ के एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी थे। आपका कहना था—**"विशुद्धानन्द ने जानबूझकर शोर डलवा दिया, ताली बजवा दी। इस सारे विरोध तथा इतने विघ्न के होते हुए यह केवल स्वामी दयानन्द की ही हिम्मत थी जो इतनी सफलता प्राप्त कर पाये।"**

यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि सभा के अध्यक्ष काशी नरेश ने सभा की समाप्ति की घोषणा नहीं की थी। स्वामी विशुद्धानन्द ने अपने आप सभा विसर्जित करवा दी। यह धांधली नहीं तो क्या था?

प्रयाग के कुम्भ मेला पर

स्वामी जी ने १८७० में आचार्यों से कहा—**"मस्तक का सिंगार करने की अपेक्षा उपासना द्वारा आत्म-सिंगार किया करो।"**

ठाकुर मुकन्दसिंह जी के अनुरोध पर नवम्बर १८७० में छलेसर पधारे। स्वामी जी के लिए एक सुन्दर चौकी बिछाई गई। उस पर एक बढ़िया कालीन बिछाया गया। स्वामी जी ने उस पर बैठने से इन्कार कर दिया। कहा—"यह हमारे शरीर पर लगी मिट्टी से ख़राब होगा। लोगों ने बहुत आग्रह किया तो बैठ गये।"

अनूपशहर में कार्त्तिक मास में शीत उतर आई थी। एक कोठे के भीतर समाधि लगाये बैठे थे। पर्याप्त समय तक उसी अवस्था में थे। शीत अत्यधिक थी तथापि आपके शरीर से स्वेद के कण टपक रहे थे।

यहाँ शीत ऋतु में भी ऋषि नंगे तन ही सो जाया करते थे। भक्तजन आते हुए ऊपर कम्बल डाल आते। जब कम्बल उतर जाता तो स्वामी जी महाराज फिर कम्बल नहीं उठाते थे।

निःसंकोच ऊँची आवाज़ से गायत्री जप करो

कर्णवास में ठाकुर लक्ष्मण सिंह स्वामी जी के समीप बैठकर ऊँचे-

ऊँचे गायत्री का पाठ कर रहा था। यह देखकर एक पण्डित दुःखी हुआ। कहा—गायत्री का पाठ इतनी ऊँची आवाज़ में मत करो। छोटी जाति के लोग भी सुनते हैं। स्वामी जी ने उसे धमका दिया। वह चुप हो गया। ऋषि जी ने ठाकुर से कहा—निःसंकोच ऊंची आवाज़ में गायत्री जप किया करो।

हम गृहस्थी के घर नहीं जाते

सन् १८७१ में जब आप मुँगेर पधारे तो एक ब्राह्मण ने बहुत विनती की कि मेरे निवास पर चलकर भोजन करिये। आपने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। दूसरे दिन स्वामी जी महाराज ने राजनाथ आदि को भेज दिया और कहा कि आप लोग भोजन कर आएँ और हमारे लिए साथ लेते आएँ। हम गृहस्थी के घर पर नहीं जाते।

उनके जीवन में ऐसी अनेक घटनाएँ घटीं। वे फूँक-फूँक कर पग धरते रहे। **विरोधियों ने कई प्रकार के दोष लगाकर उनको कलङ्कित करना चाहा, परन्तु सब शत्रु मिलकर भी उनकी धवल कीर्ति पर कोई धब्बा न लगा सके।** वर्तमान में कई गुरुओं, कई बाबों के आचरण की कहानियाँ टी०वी० व पत्रों में चर्चित रहती हैं। मर्यादा का पालन न करने से...।

जब सन् १८७२ में भागलपुर पधारे तब बरारी वाले आपको बग्घी पर बिठलाकर साथ ले आये। यहाँ बाबू नन्दन ओझा ने आपको घाट की सीढ़ियों से ऊपर आते देखा। उसने स्वामी जी को वहीं रुकने को कहा। मन्दिर के सामने एक छोटे से मकान में आसन लगा लिया। बाबू जी ने भोजन के लिए बहुत आग्रह किया, परन्तु स्वामी जी ने स्वीकार नहीं किया। एक तो रात बहुत हो चुकी थी, **दूसरे श्री स्वामी जी जंगली बैंगन खाकर निर्वाह कर लिया करते थे।**

अगले दिन सायंकाल का भोजन करना स्वीकार कर लिया। बहुत श्रद्धा से भोजन तैयार करके वह ले आये। पता चला कि अभी गंगा तट से लौटकर नहीं आये। बहुत प्रतीक्षा करके पुजारी के पुत्र से सन्देश पाकर भोजन वहाँ धर कर चले गये। प्रातः आकर बाबूजी ने देखा कि भोजन

तो वैसे का वैसा ही पड़ा है। उस पर चींटियाँ चढ़ी हैं। थोड़ी देर में श्री महाराज भी आ गये। कहा—महाराज ! क्या भूल हो गई जो आपने भोजन नहीं किया ?

स्वामी जी ने कहा—क्या पूछते हो ? भाई! आज कोई पर्व था। गंगा पार बड़ा भारी मेला लगा था। वहाँ कई लोग अपनी कन्याओं को संकल्प कर ब्राह्मणों को दान में देते थे। इस प्रकार के अज्ञान से संसार में अज्ञान व दुःख व्याप्त हो रहा है। इस विचार से मेरा हृदय आकुल-व्याकुल है। यह सुनकर नन्दन बाबू के नयनों से भी अश्रुकण टप-टप गिरने लगे।

इक टीस जिगर पर लगती है,
इक दर्द सा दिल में होता है।
हम रात को उठकर रोते हैं,
जब चैन से आलम सोता है॥

भारत की तत्कालीन राजधानी कलकत्ता में

ऋषिवर १६ दिसम्बर सन् १८७२ से मार्च सन् १८७३ के अन्त तक बंगाल के कलकत्ता आदि नगरों की प्रचार यात्रा पर रहे। श्री चन्द्रशेखर सेन बैरिस्टर ने आपको आमन्त्रित करने का उद्योग किया। आपको श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर के विशाल निवास पर ले जाया गया, परन्तु वह कमरे की व्यवस्था न कर पाये। वह ऐसा चाहते भी नहीं थे। फिर सुरेन्द्रमोहन जी के पास गये। उन्होंने भी कोई ध्यान न दिया। जब हावड़ा स्टेशन से उनके प्रमोद कानन पर ले ही गये तो उनके निवास व भोजन की सब व्यवस्था कर दी।

ब्राह्मसमाज के उपदेशक हेमचन्द्र चक्रवर्ती की शंकाओं का समाधान किया। स्वामी जी ब्राह्मसमाजी सज्जनों से मिलते जुलते रहे। श्री केशवचन्द्र सेन से भी भेंट हुई। सबके प्रश्नों का उत्तर देते रहे। राजनारायण जी वसु से हवन-यज्ञ पर शास्त्रार्थ हुआ। वसु जी की पुस्तक **'हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता'** पर ऋषि जी ने कहा—"इसके लिए पुराण तथा तन्त्र ग्रन्थों के प्रमाण मानना युक्तिसंगत नहीं। शास्त्रों से भारत तक प्रमाण मानना चाहिये।"

आबाल वृद्ध तथा स्त्रियाँ सब स्वामी जी के दर्शन करने व उपदेश सुनने के लिए आतुर थे।

देवेन्द्रनाथ ठाकुर जी ने स्वगृह पर भोजन का निमन्त्रण दिया। वहाँ चले तो गये। अब उनके मन में न जाने क्या आया कि ऋषि जी को वहीं रुकने को कहा। स्वामी जी ने कहा—"हम गृहस्थी के घर पर नहीं रहना चाहते।"

यह है फ़कीरों की मस्ती।

नौ मार्च को दिये गये व्याख्यान को 'इण्डियन मिरर' ने बहुत विस्तार से लिखा। आपने एकेश्वरवाद पर विचार रखे, जातिपाँति की हानियाँ बताईं तथा बालविवाह आदि के दोष बताये। आपके तर्क व प्रमाण बहुत प्रबल थे। आपके मौलिक चिन्तन पर श्रोता मुग्ध हो गये। पत्र ने लिखा—**"आपका स्वभाव तथा अभिव्यक्ति की शैली अत्यन्त साहसिक तथा निर्भीक थी।"**

स्वामी जी के सब व्याख्यान श्री केशवचन्द्र सेन के संरक्षण में ट्रैक्ट माला के रूप में प्रकाशित व प्रसारित करने पर भी विचार हुआ। बाबू जी का ध्यान बदल जाने से बाद में इस दिशा में कुछ भी न हो सका। स्वामी जी यहाँ हुक्का पीने का बहुत निषेध करते थे। आप इसे धूम्रपान कहते थे।

भाटपाड़ा ग्राम के पं० ताराचरण जी का ८ अप्रैल १८७४ को शास्त्रार्थ करना निश्चित हुआ। शास्त्रार्थ का विषय ताराचरण जी की इच्छानुसार 'प्रतिमा-पूजन' ही रखा गया। पं० ताराचरण जी ने पतञ्जलि के योगदर्शन के नाम पर एक सूत्र का प्रमाण दिया जिसका अर्थ है—चित्त बिना स्थूल पदार्थ के स्थिर नहीं होता, अत: उपासना में स्थूल प्रतिमा का ग्रहण किया जाता है। यह व्यास जी का वचन है।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि पतञ्जलि के शास्त्र में ऐसा सूत्र ही कहीं नहीं। यह भी कहा कि आपने योगदर्शन देखा ही नहीं।

पं० ताराचरण ने आगे चलकर कहा—उपासना मात्र ही भ्रममूलक है। तब स्वामी जी ने कहा कि आप आये थे प्रतिमा पूजन की स्थापना

का पक्ष लेकर। वह सिद्ध न करके उसका खण्डन (उपासनामात्रमेव भ्रममूलम्-मिथ्या) कर रहे हैं।

उस समय बाबू भूदेव मुखर्जी, पं० हरिहर तर्कसिद्धान्त, बाबू वृन्दावन यह कहते हुए उठ खड़े हुए कि पण्डित जी तो प्रतिमा-पूजन का खण्डन कर रहे हैं। ऋषि दयानन्द जी ने भी पं० ताराचरण से कहा—आप ऐसा बखेड़ा क्यों करते हैं।

पं० ताराचरण जी ने कहा कि मैं आपके सदृश सत्य नहीं कह सकता। ऐसा करूँ तो काशीराज मुझे निकाल दें। मेरी आजीविका का प्रश्न है। हुगली शास्त्रार्थ पूरा छपा मिलता है। हमने यहाँ सार दे दिया है।

माडर्न रिव्यू के लेख का सार

सुप्रसिद्ध पत्रिका 'माडर्न रिव्यू' में बंगाल के एक विद्वान् न्यायाधीश श्री मोहिनी मोहनदत्त ने ऋषि दयानन्द विषयक अपने संस्मरण दिये थे। आपने हुगली में ऋषि दर्शन किये। उनसे वार्त्तालाप किया। उनको सुना। शास्त्रार्थ भी सुने। उनके लेख का सार दिये बिना हम बंगाल का यह प्रकरण अधूरा ही समझेंगे।

१. "वे व्यक्ति जिनको अपने संस्कृत-विद्वान् होने का थोड़ा सा भी अभिमान था वे दूर तथा निकट से अपने विरोधी दयानन्द के व्याख्यानों को सुनने आये, परन्तु किसी भी व्यक्ति को उनसे शास्त्रार्थ करने का साहस न हुआ।"

२. "जब कभी वे व्याख्यान देते थे अथवा शास्त्रार्थ करते थे तो वे वेद, उपनिषद्, महाभारत तथा रामायण इत्यादि के मन्त्रों एवं श्लोकों के प्रमाण सर्वथा अपनी स्मरणशक्ति पर विश्वास करते हुए देते थे।"

३. ब्राह्मसमाज का आन्दोलन जिसकी स्थापना राजा राममोहन राय प्रसिद्ध सुधारक ने सन् १८३० में की थी। वह वर्तमान पूजा-पद्धति को दी गई प्रथम चुनौती थी, परन्तु न तो यह आन्दोलन था, न इस आन्दोलन का वह रूप जो महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने इसे दिया था, न ही अखिल भारतीय ब्राह्मसमाज जो बाबू केशवचन्द्र सेन ने सन् १८६६ में स्थापित

किया—लोगों को अपने विश्वास (मान्यताओं) तथा रीति रिवाजों से हटा सके परन्तु, **स्वामी दयानन्द के प्रादुर्भाव ने जो हिन्दू संन्यासी होते हुए मूर्त्तिपूजा के विरुद्ध प्रचार करते थे, लोगों में हलचल पैदा कर दी। समस्त देश जो अब तक कभी जागता ही नहीं था एकदम होशियार हो गया।**''

बिहार प्रदेश में

१७ अप्रैल सन् १८७३ को श्री स्वामी जी महाराज बिहार प्रदेश के भागलपुर नगर पधारे। भागलपुर निवासी बाबू मन्मथनाथ चौधरी बी०ए० संस्कृत सीखने तथा ज्ञान-प्राप्ति के लिए लगभग डेढ़ वर्ष तक आपके साथ रहे। यहाँ से चलकर १८ मई को आप पटना पहुँचे। यहाँ कोई भी पण्डित शास्त्रार्थ करने उनके सामने नहीं आया। काशी के लोग यह मिथ्या प्रचार करते रहे कि यह कोई जर्मन ईसाई है।

इस क्षेत्र के प्रसिद्ध भूमिपति श्री शिवगुलाम शाह ने बहुत सेवा-सत्कार किया। पौराणिक ब्राह्मणों में ऋषि के प्रभाव से खलबली मची हुई थी। ऋषि को मारपीट करके चुप करवाने के ढंग सोचे गये। पं० जगन्नाथ नाम के एक ब्राह्मण को शास्त्रार्थ करने की पौराणिकों ने प्रार्थना की। उसने कहा कि उसका मुख देखने से मुझे प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। स्वामी जी ने कहा, उसे लाओ तो सही। बीच में पर्दा करके पर्दे के पीछे से वह शास्त्रार्थ करले। ऐसा ही किया गया। 'बिहार दर्पण' पत्र में यह छपा कि स्वामी दयानन्द से शास्त्रार्थ करने के लिए ब्राह्मणों को एकत्र किया गया, परन्तु दयानन्द के सम्मुख शास्त्रार्थ अथवा उक्ति युक्ति में कौन ठहर सकता है?

जब वे ऊंचे स्वर से भाषण देते थे तो उनका स्वर घरों की पुरानी महराबों में गूंजता था। यही बात परम्परा से ब्यावर (राजस्थान) के लोग सुनाते आ रहे हैं।

यहाँ से ११ जून को आरा तथा वहाँ से २६ जुलाई सन् १८७३ को डुमराऊँ राज्य पधारे। यहाँ एक पं० दुर्गादत्त से शास्त्रार्थ हुआ। यह शिवलिङ्ग की पूजा किया करते थे। ऋषि के बलिदान के पश्चात् इसने गपौड़ों से

भरभूर अपनी जीवनी में यह लिखा—"**जब दयानन्द उत्तर देने में असमर्थ हुआ तब हँसकर कहा कि हे पण्डित दुर्गादत्त जी तुम धन्य हो, मैं जीव हूँ, तुम सर्वज्ञ हो तथा सर्वशास्त्रों को पूरा-पूरा जानने वाले हो। इस प्रकार दयानन्द जी ने हमारी प्रशंसा की और हमें प्रणाम करके कहा कि तुम ब्रह्म से मैं जीव बात नहीं कर सकता।**"[१]

इसी को कहते हैं, अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना। हमें तो आश्चर्य इस बात पर होता है कि इस सर्वज्ञ ब्रह्म ने श्री स्वामी दयानन्द जी (जो जीव थे) के नाम के साथ आदर सूचक 'जी' शब्द का प्रयोग कैसे कर दिया। पं० लेखराम जी ने १७ फ़रवरी १८९१ में इन पण्डित जी से भेंट के समय धर्म-चर्चा में इन्हें निरुत्तर कर दिया।

फिर उत्तर प्रदेश में

डुमराऊँ से मिर्ज़ापुर आये। अपनी वैदिक पाठशाला इस बार बन्द कर दी। यहाँ से प्रयाग के लिए प्रस्थान किया। २० अक्तूबर १८७३ को कानपुर पहुँचे। एक दिन श्री हेमचन्द्र चक्रवर्ती ने यह सार्थक प्रश्न किया—इतने बड़े-बड़े लोग आपसे मिलने आते हैं, इनमें से कोई कुछ नहीं जानता? बस! आप ही का कथन सत्य है?

महाराज ने हँसकर उत्तर दिया—"**सत्य को जानते तो बहुत लोग हैं, परन्तु आजीविका बन्द होने के विचार से खुलकर स्पष्ट रूप से सत्य नहीं कहते।**"

यहाँ रात भर ऋषि योग-साधना किया करते थे। श्री कन्हैयालाल अलखधारी के 'नीति प्रकाश' में छपा मिलता है, "**उनका यह निर्देश है कि परमात्मा के अतिरिक्त किसी की उपासना मत करो।**" बस यही तो इनका दोष था। अलखधारी जी ने आगे लिखा है—"संयोग से एक ईशोपासक (ऋषि दयानन्द) उनके नगर में कहीं से आ विराजा है तो उसको नास्तिक तथा भ्रष्ट बताते हैं।"

---

१. पं० दुर्गादत्त की संस्कृत आत्म कथा, पृष्ठ १४

चिराग़े मुर्दः कुजा नूरे आफ़्ताब कुजा!
ब-बीं तुफ़ावते राह अज़ कुजास्त ता बकुजा!!

अर्थात् कहाँ एक बुझा हुआ दीपक और कहाँ सूर्य का उजाला! देखिए तो मार्ग का अन्तर कहाँ से कहाँ तक है!!

लखनऊ में १० नवम्बर १८७३ को पहुँचे। यहाँ पं० गंगाधर से मूर्त्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हुआ। स्वामी जी प्रतिपक्षी के कथन का खण्डन कर ही रहे थे कि चार वर्ष पहले का काशी का इतिहास दोहराते हुए विरोधियों ने हुल्लड़ मचा दिया।

पं० गंगाधर के शिष्य पं० केदारनाथ चट्टोपाध्याय ने देवेन्द्र बाबू को लिखे अपने पत्र में शास्त्रार्थ के समय **ऋषि की भाषण शैली को शान्त, सम्बद्ध और युक्तियुक्त बताया और अपने गुरुजी की शैली को उत्तेजनापूर्ण, उद्धत....।**

पाँचवीं बार काशी नगरी पर चढ़ाई

फर्रुख़ाबाद, छलेसर, मथुरा आदि की यात्राएँ करते हुए आपने मई १८७४ में फिर से काशी में डेरा डाल दिया। इस यात्रा में ऋषि जी की भेंट सर सैयद अहमद ख़ाँ तथा महाराजा ईश्वरीनारायण जी दोनों से हुई। महाराजा ने पं० ताराचरण तर्करत्न के सामने ऋषि का बहुत श्रद्धापूर्वक सत्कार किया। पं० ताराचरण देखता ही रह गया। ऋषि को काशी की अपनी सत्यशास्त्र पाठशाला के प्रबन्ध की चिन्ता लगी रहती थी।

प्रयाग, जबलपुर होते हुए स्वामी जी गोदावरी नदी के तट पर २४ अक्तूबर सन् १८७४ को नासिक पहुँचे। यहाँ भी कुम्भ मेले पर लाखों यात्री आते हैं। पाखण्ड खण्डन सुनकर भी कोई पण्डित शास्त्रार्थ के लिए आगे नहीं आया।

नासिक व मुम्बई आगमन की तिथियाँ

यहाँ यह बता देना अत्यावश्यक है कि महर्षि अक्तूबर के अन्तिम सप्ताह नासिक पधारे। पं० लेखराम जी, लक्ष्मण जी ने २४ तक यहाँ प्रवास लिखा है। श्री कुशलदेव जी ने श्रम तो बहुत किया, परन्तु न जाने तिथियों

में कैसे कुछ गड़बड़ हो गई। आपने २० अक्तूबर से नासिक से चलकर उसी दिन मम्बई पहुँचना लिख दिया है। हमने भी बिना प्रमाण के दी गई उनकी इस तिथि को प्रामाणिक मान लिया। तत्कालीन 'ज्ञानोदय' नवम्बर १९ सन् १८७४ के अंक में २५ को नासिक आना छपा है। यहाँ चार दिन निवास करके आप मुम्बई के लिए प्रस्थान कर गये। **हमारा यह मत है कि २३ को नासिक आये और २६ को मुम्बई चले गये।**

आर्यसमाज की स्थापना

मुम्बई-यात्रा

ऋषिवर अभी प्रयाग में ही थे कि श्री सेवकलाल कृष्णदास ने काशी शास्त्रार्थ का गुजराती अनुवाद प्रकाशित कर दिया। 'आर्यमित्र' में इसका सार भी छप गया। तब किसे पता था कि स्वामी जी महाराज अति शीघ्र यहाँ पधार जाएँगे। **आप २६ अक्तूबर सन् १८७४ में महानगरी मुम्बई में पधारे।** स्टेशन पर आपका भव्य स्वागत किया गया। मुम्बई से दो कोस दूर बालकेश्वर मन्दिर में आपको ठहराया गया।

आपने आते ही चार भाषाओं में एक विज्ञापन प्रकाशित करवाकर जनता को निमन्त्रण दिया कि जिनकी धर्म तथा अधर्म सम्बन्धी विषयों पर विचार करने और जानने की इच्छा हो वे इस स्थान पर आवें। इससे नगर भर में कोलाहल मच गया। पण्डित वर्ग ने सत्यासत्य के निर्णय की बजाय अपने चेलों में झूठमूठ की बातें बनाकर वातावरण में उत्तेजना व कटुता उत्पन्न कर दी।

वल्लभाचार्य मतवादियों से शास्त्रार्थ

महाराज लायबल केस के कारण कुछ समय से मुम्बई प्रदेश में इस मत के बारे-जनता में भारी रोष था। जो लोग इस मत के आचार्यों के पशुओं सरीखें, दुष्कर्मों से रुष्ट होकर इस मत को छोड़ना चाहते थे वे भी इस विचार के थे कि स्वामी जी का इनसे शास्त्रार्थ हो जाये। सब मत-पन्थों के पण्डितों ने वल्लभ मत वालों से मतैक्य करके स्वामी जी के विरुद्ध शोर मचाया। श्री स्वामी जी की सफलता में अपनी आजीविका के मारे जाने से सब दुःखी व चिन्तित थे। सबने मिलकर खरे सद्धर्म के प्रकाश को ढकने का प्रयास किया। इस मत की पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त करके ऋषि लेखनी व वाणी से इसका निरन्तर खण्डन करते रहे।

वल्लभ मत के जीवन जी गुसाईं ने स्वामी जी के सेवक को गांठकर स्वामी जी को विष देने का षड्यन्त्र रचा। किसी को इसकी भनक पड़

गई। **तब स्वामी जी ने कहा—"मुझे कई बार विष दिया गया, परन्तु मैं मरा नहीं।"**

स्वामी जी के पास किसी ने २४ प्रश्न भेजे। स्वामी पूर्णानन्द जी ने श्री महाराज की सम्मति से झट से इनके उत्तर छपवा दिये। मथुरा पन्थ भाटिया नामी एक व्यक्ति ने वल्लभ मत तजकर कण्ठी माला तोड़ दी। अनेक लोगों ने ऐसा ही किया और स्वामी जी के साथ जुड़ गये।

स्वामी जी महाराज ने निरन्तर चार घण्टे तक ईशोपासना के विषय को लेकर मूर्त्तिपूजा का खण्डन किया। इस व्याख्यान की बहुत प्रशंसा हुई। यह बात भी प्रसिद्ध हुई कि अब उनका सामना करने का कोई भी साहस नहीं करेगा।

फिर मुम्बई के पण्डितों से ऋषि जी का एक बड़े पुस्तकालय में शास्त्रार्थ हुआ। कोई भी पण्डित वेद के प्रमाण से मूर्त्तिपूजा सिद्ध न कर सका।

'नीतिप्रकाश' पत्र में छपा मिलता है कि मुम्बई में दो सौ पण्डित इस काम में लगे हैं कि ईश्वर के नाम पर उपदेश देने वाले स्वामी दयानन्द के कथन को वेदविरुद्ध सिद्ध करके खण्डन करें।

जब ऋषि को मरवाने के जीवन गोस्वामी के नये-नये षड्यन्त्र विफल हो गये तो वह मद्रास भाग गया।

आर्यसमाज की स्थापना का विचार तथा उसका विरोध

ऋषि के निरन्तर प्रचार व सत्योपदेश का नगर निवासियों पर गहरा प्रभाव पड़ा। कुछ बुद्धिमान सत्यनिष्ठ लोग चाहते थे कि अब इस वेदोक्त विचारधारा के प्रसार के लिए एक संगठन की स्थापना की जाए, परन्तु स्वामी जी को आमन्त्रित करने वालों में से कई [जिन्हें इस विचार से प्रसन्न होना चाहिए था] इस विंचार का विरोध करने लगे। ऐसे लोगों में नवीन वेदान्ती, ब्राह्मसमाजी व कई प्रार्थनासमाजी थे। सबका अपना-अपना स्वार्थ था। **ये सब इस उद्देश्य के साथ जुड़े थे कि स्वामी जी के जाते ही उनसे प्रभावित लोगों को अपने चेले बना लेंगे।**

ब्राह्मसमाजी, प्रार्थनासमाजी दोनों ही वेद को नहीं मानते थे। अन्य-अन्य स्थानों पर भी कहीं-कहीं ऐसे लोग स्वप्रयोजन से आर्यसमाज में घुसे। पंजाब में मांसाहार का पैग़म्बर अंग्रेज़ सरकार का गुप्तचर राय बहादुर मूलराज इसका ज्वलन्त प्रमाण है ही।

स्वामी जी को साठ लोगों ने आर्यसमाज बनाने व चलाने के लिए हस्ताक्षर करके दिये। कहने व करने में बड़ा अन्तर होता है। घर वालों के, बरादरी के दबाव पड़े तो कई पीछे हट गये।

गुजरात यात्रा

२८ वर्ष पश्चात् यतिराट् दयानन्द ने गुजरात यात्रा का मन बनाया। भले ही वे मोह के सब तार तोड़ चुके थे, परन्तु गुजरात से ऋषि को स्नेह तो था ही। उन्हें मथुरा, प्रयाग, छलेसर, कोलकाता, पटना, रेवाड़ी, ब्यावर, अमृतसर से जितना प्रेम था उतना ही राजकोट, अहमदाबाद व सूरत से भी था। राजकोट के राजकुमार कॉलेज में मोरबी के राजकुमार वाघजी से वार्त्तालाप करते हुए उनका यह स्नेह छलकता हुआ देखा गया। श्री महाराज ने पं० कृष्णराम इच्छाराम से यह इच्छा व्यक्त की वे सूरत प्रचारार्थ जाना चाहते हैं। आपने अपने कवितागुरु नर्मदाशंकर को पत्र लिखा। कविजी ने सहर्ष उनके विचार का स्वागत किया।

ऋषि ने ईंट का सिरहाना बनाकर, मिट्टी का ढेला सिर के नीचे रखकर और गंगा-तट की रेती पर भी रातें बिताईं। उनको सुख-सुविधा की नहीं व्यवस्था की चिन्ता रहती थी। अत: सेवक बलदेव सिंह को पहले सूरत जाकर अपने निवास आदि की व्यवस्था देखने को कहा।

श्री महाराज कैसी व्यवस्था चाहते थे

१. आप एकान्त और रमणीय स्थान चाहते थे।

२. नगर की भीड़-भाड़ से दूर डेरा किया करते थे।

३. डेरा वहाँ लगाते थे जहाँ स्त्रियों का आना-जाना न हो। लंगोटबन्द ब्रह्मचारी इस नियम का कड़ाई से पालन किया करते थे।

ऋषि को सूरत के डिप्टी कलैक्टर के उद्यान में ठहराया गया, परन्तु

महाराज को यह स्थान नहीं जँचा। उद्यान तासी नदी के तट पर था। इधर स्त्रियाँ स्नान आदि के लिए आती थीं। उनका शोर भी उनके एकान्त में बाधक था। संन्यास मर्यादा का पालन करने वाले महात्मा की व्यवस्था अन्यत्र करवा दी गई।

यहाँ किसी ने उनकी भोजन व्यवस्था के बारे कुछ भी न किया। **अपने जन्म के प्रदेश में ऐसी उपेक्षा की श्री महाराज ने कतई चिन्ता नहीं की।** उनके पास जो थोड़े से पैसे थे दो-चार दिन में ही समाप्त हो गये। पं० कृष्णराम जी के पास भी दो-चार रुपये ही थे। वे भी समाप्त हो गये। पण्डित जी उनको बाज़ार से खिचड़ी लाकर खिलाते रहे। जब सब पैसे समाप्त हो गये तब कविवर नर्मदाशंकर जी को पण्डित जी ने इस स्थिति से अवगत करवाया। उन्हें इससे बहुत लज्जा आई। दुःख भी हुआ। उन्होंने तुरन्त इस निमित्त कुछ धन संग्रह किया।

सूरत में पं० दुर्गाराम सुधारक वृत्ति के एक ब्राह्मण मुख्याध्यापक थे जिन्हें सूरत का लूथर माना जाता था। कवि जी ने इनसे विचार करके स्वामी जी के चार व्याख्यान करवाने का कार्यक्रम बनाया। सुधारकों का विरोध कहाँ नहीं हुआ? ऋषि का गुजरात में भी विरोध हुआ। 'गुजरात मित्र' पत्रिका का तत्कालीन सम्पादक स्वामी जी का घोर विरोधी था। ऋषि ने यहाँ भी शास्त्रार्थ करने की खुली चुनौती दे दी।

चौथा व्याख्यान सुनने के लिए भारी भीड़ एकत्र हुई, परन्तु जहाँ व्याख्यान होना था वह मकान ही भीतर से बन्द करवा दिया गया। स्थान परिवर्तन का किसी भक्त ने सुझाव दिया, परन्तु ऋषि जी ने वहीं कुर्सी पर बैठकर अपना व्याख्यान दिया। श्रोता भी डटकर सुनते रहे। इतिहास तो ऐसे ही बनता है। ऋषि ने अपनी दृढ़ता के पग-चिह्न यहाँ भी छोड़े।

फिर पाँचवाँ व्याख्यान भी कविवर नर्मदाशंकर जी के निवास के पास हुआ। इस व्याख्यान का विषय मूर्त्तिपूजा था, न कि अद्वैत मत जैसा कि श्री हरबिलास जी के ग्रन्थ में छपा है। यहाँ कुछ लोगों ने महाराज पर ईंट-पत्थर तथा धूल फैंकी। **गुजरात की धरती ने भी अपने भूमिपुत्र के धीरज की परीक्षा ले ली। कहा—"अपने ही बन्धुओं द्वारा फैंके गये**

ये पत्थर मेरे लिए पुष्प वर्षा है।''

मोहनबाबा ब्रह्मचारी द्वारा सम्मान—सूरत के इस लोकमान्य बाबाजी ने महाराज का बहुत उत्साह से स्वागत सम्मान किया। उनके आश्रम में श्रद्धा सजीव होकर झूम रही थी।

यहाँ देवियों को दर्शन देना अस्वीकार कर दिया, परन्तु कवि जी तथा मोहन बाबा जी के अनुरोध पर बहुत सकुचाकर ऋषि ने ऐसा करना मान लिया। ऋषि ने देवियों को अपने चरण स्पर्श करने से रोक दिया। **बाल ब्रह्मचारी दयानन्द ने कहीं भी मर्यादा भंग नहीं होने दी।**

सूरत में कतर ग्राम के देसाई कृषक आपके दर्शनार्थ आये तो कहा, नगरों के लोग आपकी अत्युत्तम पदार्थों से सेवा करते हैं कभी हमारे ग्राम में भी पधारिये हम आपको 'पोंक' खिलाएंगे। गुजरात में कच्चे गेहूँ को अग्नि पर सेंक कर बड़े चांव से खाया जाता है। ऋषि जी ने ग्रामीणों के संग सुरुचि से पोंक को खाया।

ग्रामीण बन्धु आपको ले जाने के लिए रथ को सजाकर लाये, परन्तु आपने रथ पर बैठना अस्वीकार कर दिया। सबके साथ पैदल ही चल पड़े। यद्यपि आप अपनी स्वाभाविक चाल से नहीं चलते थे, परन्तु ग्रामीण बन्धु व सिपाही उनके साथ अपना पग नहीं मिला सके। ये पीछे रह जाते। ऋषि जी को थोड़ी-थोड़ी दूरी पर उनको साथ लेने के लिए रुकना पड़ता। चलते-चलते बालविवाह आदि कुरीतियों से बचने का उपदेश भी देते जाते थे।

'गुजरात मित्र' अथवा सरकार मित्र?

'गुजरात मित्र' ऋषि जी के विरुद्ध आग उगलता रहा। सरकार को ऋषि के विरुद्ध उकसाता रहा। वल्लभ सम्प्रदाय के लोग अपने गुरु के दुराचरण पर हाहाकार करते हुए जब हाईकोर्ट पहुँचे। तब तो गुजरात मित्र ने चुप्पी साध ली। नीलकण्ठ शास्त्री इसके पड़ोस में हिन्दुओं को धर्मच्युत करता रहा। अस्पृश्यता, जातिवाद के महारोग को देखकर और कर्नल ऑल्काट भूतप्रेत आदि अन्धविश्वासों का भारत में आयात करने पहुँचा

तब भी 'गुजरात मित्र' की नींद न टूटी। सब प्रकार के अन्धविश्वासों का गुजरात में अखण्ड साम्राज्य रहा, परन्तु यह 'गुजरात मित्र' सरकार मित्र बनकर अपनी बाँसुरी बजाता रहा।

सूरत से ऋषिवर भरुच पधारे। वहाँ भी माधवराव त्र्यम्बक अपने दल-बल सहित आये। उनके एक शिष्य ने प्रतिमा-पूजन पर शास्त्रार्थ करने की इच्छा जताई। स्वामी जी ने उसके आगे चारों वेद रखकर कहा इनमें से किसी एक वेदमन्त्र का अर्थ कीजिये। उसके द्वारा एक मन्त्र के किये गये अर्थों में ऋषि जी ने कई अशुद्धियाँ गिना दीं। वह वहाँ से चल दिया। जाते-जाते पं० त्र्यम्बक जी ने अथवा उनके एक शिष्य ने उंगुली से तर्जना करते हुए ऋषि को कुछ कठोर शब्द बोले।

इस पर ऋषि के सेवक बलदेव ने उसे धमका दिया तो ऋषि दयानन्द जी ने सेवक को शान्त करते हुए कहा—"तुम किस पर कुपित हो रहे हो? ये तो हमारे भाई हैं। इन्हीं की कल्याण-कामना करते हुए हम दिनरात देशभर में विचर रहे हैं।"

भरुच में कुछ भार्गव, स्त्रियाँ व पुरुष ऋषि का उपदेश सुनने की इच्छा से आये। स्वामी जी ने अपने व देवियों के बीच में एक पर्दा करके उन्हें कुछ उपदेश दिया। जिस कठोरता से ऋषि ने इस मर्यादा का पालन किया उसका दूसरा उदाहरण मिलना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

भरुच में पं० कृष्णराम इच्छाराम को ज्वर हो गया। उनके रुग्ण होने पर स्वामी जी ने उनका सिर दबाया। पण्डित जी के रोकने पर कहा— **"सेवा करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य बनता है यदि बड़े छोटों की सेवा नहीं करेंगे तो छोटों में सेवा का भाव नहीं आयेगा।"**

अहमदाबाद-राजकोट आदि की यात्रा

१२ दिसम्बर को चलकर महर्षि २८ दिसम्बर १८७४ तक अहमदाबाद में रहे। यहाँ शास्त्रार्थ की सब शर्तों का निर्णय करके भी कोई भी पण्डित शास्त्रार्थ करने नहीं पहुँचा। स्वामी जी ने शास्त्रार्थ स्थल

पर पुनर्जन्म विषय पर एक सुन्दर व्याख्यान दिया। टाईम्ज़ आफ़ इण्डिया पत्र में आपकी इस यात्रा पर ऐसा छपा था—"He is not only a master of the Vedas but possesses a wide knowledge of all the Hindu Shastras and is well acquainted with the sacred books of the Jains, Christians and Muslims."[१] अर्थात् उन्हें न केवल वेदों का अथाह ज्ञान है प्रत्युत उनको हिन्दुओं के सब शास्त्रों की भी व्यापक जानकारी है और आप जैनों के, ईसाइयों के तथा मुसलमानों के पवित्र साहित्य से भली भाँति परिचित हैं। "उनके व्याख्यानों में भारी भीड़ होती थी और जनता को अच्छे लगते थे" यह भी उक्त पत्र में छपा था।

राजकोट की ऐतिहासिक यात्रा

गृह-त्याग के २८ वर्ष पश्चात् श्री महाराज अपने जन्म स्थान के निकटस्थ नगर राजकोट की फेरी डालने पहुँचे। न जाने तब जन्म स्थान के, परिवार के व आरम्भिक काल के संस्कारों व स्मृतियों ने मन में क्या उथल-पुथल मचाई होगी, परन्तु स्वगृह व स्वजनों के मोह के तारों को तार-तार करते हुए वीतराग दयानन्द ने इस दुर्बलता का कहीं भी कोई संकेत नहीं दिया। यह कोई साधारण उपलब्धि नहीं। संन्यासी हो तो ऐसा। महाविद्वान् स्वामी वेदानन्द जी ने स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के सम्बन्ध में कभी लिखा था कि विरक्त शिरोमणि स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी को साधुओं की रीति-नीति व मर्यादा का जितना ज्ञान व ध्यान है इतना विरले साधुओं को ही होगा। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने साधुओं की नीति-रीति व परम्परा के आधार पर लिखा है कि संन्यासी बारह वर्ष के पश्चात् जन्मस्थान की फेरी लगाया करते हैं। इस रीति-नीति को निभाते हुए वे राजकोट से चुपचाप टंकारा की फेरी भी लगाकर आये। ['यद्यपि इसका ठीक-ठीक निश्चय नहीं' ये शब्द भी स्वामी जी ने लिखे हैं।]

1. Times of India, Jan. 4, 1875

हमारे माननीय दयालमुनि जी तो ऐसा नहीं मानते। हमारा भी कोई पूर्वाग्रह तो नहीं, परन्तु २८ वर्ष के अन्तराल पर स्वामीजी भी जन्मस्थान हो आये—यह असम्भव भी नहीं कहा जा सकता।

राजकोट में ऋषि की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि राजकोट के राजकुमार कॉलेज में दिया गया व्याख्यान है। उस समय मोरबी के राजकुमार वाघजी का जब परिचय करवाया गया तो महाराज यह कहे बिना न रह सके—"मैं तो आपकी प्रजा हूँ।" इनके उत्तराधिकारी राजा लखधीरसिंह जी की अध्यक्षता में सन् १९२६ में टंकारा में ऋषि की जन्म शताब्दी जब मनाई गई तब भी किसी विद्वान् ने इन शब्दों को स्मरण किया था।[१]

राजकोट में ऋषि के १२ व्याख्यान हुए। राजकोट के धर्मशाला चौक में **'देश भाषा'** में दिये गये व्याख्यान का विशेष प्रभाव पड़ा। ऐसा श्री शंकरलाल जी ने पं० लेखराम जी को बताया था। **'देश भाषा'** का सीधा अर्थ यह है कि ऋषि ने गुजराती में व्याख्यान दिया। स्वामी सत्यानन्द जी ने भी कुछ ऐसा ही संकेत दिया है। राधास्वामी गुरु हजूरजी ने मुम्बई में ऋषि की सफलता का एक कारण वहाँ भी गुजराती भाषा में संवाद आदि लिखा है।

इस यात्रा में गोरक्षा, मांसभक्षण निषेध, देशोन्नति, मूर्त्तिपूजा तथा नवीन वेदान्त का खण्डन व्याख्यान के मुख्य विषय रहे। **ऋषि ने सर्वत्र गोरक्षा पर व्याख्यान दिये।** डॉ० जे जोर्डन्स की सोच का फिर प्रतिवाद करना पड़ता है कि कोलकाता की सभा के प्रभाव का निराकरण करने के लिए ऋषि ने पालिसी रूप में इसे अपनाया-उठाया।

निर्भीक-निर्भीड़

वेदानुसार ईशोपासना का एक फल मनुष्य का निर्भीक व निर्भीड़ होना है। हिन्दी भाषी लोग निर्भीक शब्द का तो प्रयोग करते हैं, परन्तु

१. 'महर्षि दयानन्द सरस्वती : सम्पूर्ण जीवन चरित्र' भाग २ में भूलवश या मुद्रण दोष से लखधीरसिंह जी की बजाय श्रीमान् वाघ जी को ही पादटिप्पणी में टंकारा-जन्म शताब्दी का अध्यक्ष लिखा गया। इसका हमें खेद है।

निर्भीड़ को समझते तो हैं प्रयोग नहीं करते। इस मराठी शब्द का अर्थ है जो भीड़ से भी न दबे। जो किसी का भी अनुचित दबाव न माने। ऋषि दयानन्द निर्भीक भी थे और निर्भीड़ भी। उनका जीवन उनकी निडरता की घटनाओं से भरा पड़ा है। श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ऋषि-जीवन की सामग्री की खोज में बाँकनेर भी गये। वहाँ राजकवि सुन्दरजी नाथूराम ने आपसे प्रश्न किया—"क्या आप यह मानते हैं कि स्वामी दयानन्द काठियावाड़ के निवासी थे?"

श्री देवेन्द्रबाबू ने उत्तर दिया—"निश्चय ही वे काठियावाड़ के निवासी थे।"

इस पर कवि सुन्दरजी ने कहा—"काठियावाड़ में कभी ऐसे पुरुष सिंह का जन्म नहीं हो सकता।"

यह कहकर कवि जी ने देवेन्द्रबाबू से कहा—"एक दिन मैं सन्ध्या वेला में चोटिला की धर्मशाला में जाकर ठहरा था। यह घटना जनवरी सन् १८७५ की है। चोटिला राजकोट से कोई १३ मील की दूरी पर है। मैंने स्वामी दयानन्द जी को वहाँ उपस्थित देखा। मैंने राजकोट में उनके दर्शन तो किये, परन्तु वार्त्तालाप का वहाँ सौभाग्य प्राप्त न हो सका।"

हमें मात्र साधु न समझें

रात्रि समय थानेदार उनसे बातचीत करके चले गये तब उनको वहाँ अकेला पाकर उनके समीप जाकर कुछ समय तक उनसे वार्त्तालाप किया। अगले दिन स्वामी जी के व्यक्ति प्रस्थान करने की तैयारी में लगे हुए थे। एक मेमन मुसलमान गाड़ीवान से सामान ले जाने की बात हो चुकी थी। गाड़ीवान का स्वामी जी के व्यक्तियों से विवाद हो रहा था। वह स्वामी जी के व्यक्तियों को मारने को उद्यत था। उन्होंने स्वामी जी को उससे विवाद का सब वृत्तान्त सुनाया। तब स्वामी जी अपने कमरे से बाहर आये और मेमन को कड़ककर बोले—"**तुम यह मत समझ लेना कि मैं संन्यासी या फ़कीर हूँ। जो किराया भाड़ा तुम से ठहरा है तुम उससे यदि फिरोगे तो मैं एक थप्पड़ मारकर तुम्हारे ये बत्तीस के बत्तीस दाँत तोड़ डालूँगा।**" यह सुनकर मेमन सीधा हो गया और उनका सब

सामान लादकर, गाड़ी में बिठलाकर बढ़वाण की दिशा को चल पड़ा।

राजकवि जी ने बताया कि उपर्युक्त शब्दों को बोलते हुए स्वामी जी के मुख के भाव तथा उनके बोलने की शैली से उनकी असाधारण तेजस्विता का परिचय मिलता था। इससे कवि जी के मन में यह बात आई कि ऐसा निर्भीक पुरुष कदापि काठियावाड़ का रहनेवाला नहीं हो सकता।

देवेन्द्रबाबू लिखते हैं कि राजकवि का अनुमान सर्वथा निर्मूल तो नहीं था, क्योंकि काठियावाड़ के लोग साधारणतः इतने भीरु स्वभाव के होते हैं कि अनुमान होता है कि ऋषि दयानन्द जैसा तेजस्वी प्रतापी पुरुष उत्पन्न करने का सामर्थ्य काठियावाड़ की भूमि में नहीं है, परन्तु विधाता ने ऐसा ही रचा था कि स्वामी जी काठियावाड़ की भूमि में जन्म लें।

दीन, दरिद्र, देश-बन्धुओं की पीड़ा

गुजरात से जुड़ा ऋषि जीवन का एक और अनूठा प्रेरक प्रसंग ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सन् १८८१ में श्री स्वामी जी आगरा में विराजमान थे। आपने वहाँ से १८ जनवरी सन् १८८१ को मुम्बई आर्यसमाज के मन्त्री श्री सेवकलाल कृष्णदास को एक पत्र लिखा। इस पत्र के साथ एक अन्य महत्त्वपूर्ण पत्र श्री गोपालराव हरि देशमुख तथा श्री महादेव गोविन्द रानडे के नाम भी भेजा गया। पत्र पृथक् से भेजे जाने पर सरकार के हाथ लग सकता था। ऋषि अंग्रेज़ी भले ही नहीं जानते थे, परन्तु अंग्रेज़ को जानते थे सो दूरदर्शिता से काम लिया। यह पत्र आगे दिया जाता है। यह पत्र १८ जनवरी सन् १८८१ को लिखा गया होना चाहिए। ऊपर तिथि नहीं दी गई।

पुनः मुम्बई आगमन

ऋषि राजकोट से चोटिला, बढ़वाण होते हुए २१ जनवरी को अहमदाबाद पधारे। २९ जनवरी १८७५ को एक बार फिर मुम्बई नगर में आना हुआ। ऋषि जब मुम्बई से अपने अगले कार्यक्रम पर गये तो पण्डित लोग झूठमूठ यह कहते फिरते थे कि हम तो शास्त्रार्थ करना चाहते हैं,

परन्तु स्वामी जी ही यहाँ से चले गये। अब कमलनयन आचार्य की जानकारी के बिना ठक्कर जीवनदयाल आर्य से शिवनारायण बेनीचन्द (कमलनयन का शिष्य था) का यह समझौता हुआ था कि स्वामी दयानन्द जी तथा आचार्य कमलनयन का मूर्त्तिपूजा विषय पर शास्त्रार्थ होना चाहिए। इस शास्त्रार्थ के लिए बहुत यत्न किये गये, परन्तु कमलनयन बहाने बनाकर शास्त्रार्थ में अड़ंगे लगाकर इसे टालता गया। उसने स्वामी दयानन्द जी की विनीत विनती भी ठुकरा दी। वह शास्त्रार्थ से बचना चाहता था। शास्त्रार्थ स्थल पर पहुँच कर भी कमलनयन उठकर चला गया। वह ऋषि का व्याख्यान भी (मूर्त्तिपूजा विषय पर) सुनने को तैयार न हुआ। इससे मूर्त्तिपूजा में आस्था रखने वाले अनेक गृहस्थों की श्रद्धा ही उठ गई।

ऋषि की इसी मुम्बई यात्रा के समय विश्व के प्रथम आर्यसमाज की स्थापना की गई। राजेश्री दयालदास कोठरी प्रधान बनाये गये। मन्त्री पद पर राजेश्री पानचन्द आनन्द जी पारीख आसीन हुए। तब बड़े-बड़े व्यक्ति मुम्बई पूना आदि में समाज से जुड़े, परन्तु इनमें कोई पं० गुरुदत्त, मुंशीराम, कृपाराम, लेखराम, नारायणप्रसाद, नित्यानन्द नहीं था। राजभक्त अधिक थे सो आर्यसमाज महाराष्ट्र में प्रतापी संगठन न बन सका। यदि तब कोई भाई श्यामलाल, पं० नरेन्द्र, शेषराव या वंशी भाई मिल जाता तो इतिहास कुछ और ही होता।

श्री श्यामजीकृष्ण वर्मा एक मेधावी युवक थे। उन्होंने उसी वर्ष जाति बन्धन तोड़कर भारत में सबसे पहला ऐसा विवाह किया। देश के लिए आपने विदेशों में बहुत कुछ किया, परन्तु ऋषि मिशन के लिए, वैदिक साहित्य के लिए, वेद के लिए, आपने कुछ भी नहीं किया। हरविलास शारदा जी ने आपको अपनी प्रतिभा का मानव जाति को लाभ पहुँचाने की प्रेरणा दी, परन्तु आप इस दिशा में कोई स्मरणीय कार्य न कर सके। यह एक कटु सत्य है। इसे छिपाया नहीं जा सकता।

आर्यसमाज मुम्बई के संस्थापक सदस्यों में से एक का नाम मूलजी ठाकरसी था। यह भुज कच्छ से सम्बन्ध रखते थे और भाटिया बरादरी

में जन्में थे। आजीवन ब्रह्मचारी रहे। इनकी आगे की वंशावली का प्रश्न ही नहीं उठता। इन्हीं के कहने से कर्नल ऑल्काट व मैडम ब्लैवट्स्की की ऋषि जी से भेंट हुई थी। बिरादरी द्वारा बहिष्कार का बड़ा मिज़ाईल पोंगापन्थियों ने इन पर छोड़ा। इन्होंने वीरता से सारे विरोध का सामना किया। जातिवादी इन्हें डरा दबा न सके।

गुजरात में उसी काल में इनसे मिलते-जुलते नाम के एक-दूसरे सज्जन थे ठाकरसी मूलजी। यह सौराष्ट्र से सम्बन्ध रखते थे। यह आर्यसमाजी नहीं थी, परन्तु इनका जन्म भी भाटिया कुल में हुआ। गुजरात में अब तक लेखकों को इन दोनों के नाम की सादृश्यता ने भ्रमित किया है। हमारे माननीय कुशलदेव जी ने भी भ्रमित होकर ठाकुरसी मूलजी के वंशजों को मूलजी ठाकुरसी का वंशज मान लिया। ऐसा भ्रम किसी को भी (हमें भी) हो सकता है। ठाकरसी मूलजी गृहस्थी थे, परन्तु आर्यसमाजी नहीं थे। आर्यसमाज का जाति-पाँति से कोई लेना-देना नहीं, परन्तु यहाँ एक ही बरादरी में दोनों का जन्म लेना भी भ्रम का कारण बन गया। यह चक्कर आगे न चल पड़े सो हमें यहाँ यह स्पष्टीकरण देना पड़ा।

मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना के चार वर्ष के भीतर महाराष्ट्र के प्रसिद्ध साहित्यकार तथा जज रहे प्रतिष्ठित राज्याधिकारी श्री गोपालराव हरि देशमुख ने नासिक में अपने स्वगृह पर पंढरपुर की एक ब्राह्मण पंडिता अनुमति बाई की भागवत पुराण की कथा करवाई। सैकड़ों श्रोताओं ने भक्तिभाव से इस कथा को सुना।[१] श्री देशमुख की ऋषि जीवन में बहुत चर्चा है। ऋषि पुराणों को अनार्ष मानकर इनका खण्डन करते थे। गोपालराव जी सिद्धान्त के कच्चे निकले। महाराष्ट्र में आर्यसमाज की उन्नति में ऐसे बड़े लोगों का कच्चापन बाधक बनना घातक सिद्ध हुआ। रोग का कारण हमने खोजकर यहाँ दे दिया है।

---

१. द्रष्टव्य 'आर्य विद्या प्रकाशक' उर्दू मासिक लाहौर, अगस्त १८७९ के अंक में 'ईल्मी अज़कार'

पूना-यात्रा

श्री महादेव गोविन्द रानडे तथा मोरेश्वर कुण्टे आदि महानुभावों ने श्री स्वामी जी की कीर्ति सुनकर आपको पूना आमन्त्रित किया। श्री रानडे तब वहाँ जज थे। ऋषि का २० जून १८७५ को पूना आगमन हुआ। महाराज को श्री शंकर सेठ के निवास पर ठहराया गया। अब वहाँ चर्च है।

स्वामी जी ने यहाँ आते ही शास्त्रार्थ का खुला निमन्त्रण दे दिया, परन्तु कोई आगे न आया। तब नगर तथा लश्कर (छावनी) दोनों में आपके ५० व्याख्यान हुए। ऐसा कहा जाता है। भिड़े के बाड़े में हुए पन्द्रह व्याख्यान उसी समय एक मराठी पत्र में छप गये फिर हिन्दी तथा उर्दू में भी कई बार प्रकाशित हुए हैं। अब कई अन्य भाषाओं में भी पूना प्रवचन के नाम से छपते रहते हैं। महात्मा मुंशीराम जी ने इनका उर्दू अनुवाद करके इन्हें **'उपदेश मञ्जरी' सुन्दर नाम दिया।** उर्दू में यह पुस्तक चार बार छप चुकी है।

पूना के पौराणिक ब्राह्मणों ने जी जान से श्री स्वामी जी का विरोध किया। सामने आकर विरोध करने की किसी में हिम्मत नहीं थी। ऋषि ने सोने वालों को झकझोरा। जातिवाद, मूर्ति-पूजा आदि सकल अन्धविश्वासों का खण्डन किया। लोगों में आपके व्यापक प्रभाव को देखकर ईसाइयों ने पादरी नीलकण्ठ शास्त्री को बुलवाया। वह आपके प्रभाव का निराकरण करने में विफल रहा। भक्तों ने आपको हाथी पर बिठाकर शोभा यात्रा निकाली। पूना के पोंगापन्थी प्रतिमापूजकों ने आपका घोर-विरोध किया। शोभा-यात्रा पर ईंट, पत्थर व कीचड़ सब कुछ फैंका गया। महादेव रानडे के ऊपर भी कीचड़ पड़ा। पूना के विरोधी तो दंगा करने पर तुले हुए थे। **विरोधियों ने एक 'गर्दभ शोभा यात्रा' निकालकर अपनी सभ्यता का प्रदर्शन किया।** पुलिस यह सब कुछ देखकर मूक दर्शक बनी रही। रात्रि १२ बजे सभा की समाप्ति पर पुलिस अधिकारी ट्रेने ने सुरक्षा की दृष्टि से ऋषि को रात-रात वहीं रहने को कहा। यह कहा, आप पर आक्रमण का भय है। **ऋषि ने कहा—हम अपने डेरे पर ही जाएँगे। अपराधियों को विरोधियों ने हीरो बना दिया।**

नकली दयानन्द की तो मिट्टी खराब होगी ही—ऋषि से कहा गया कि गधे पर एक नकली दयानन्द बनाकर उसके गले में जूतों का हार डालकर........।

हँसकर ऋषि बोले—'अरे नकली की तो मिट्टी खराब होगी ही।'

जो चाँद पै थूके मुँह अपने पर थूकों की भरमार करे।

एक लुप्त इतिहास का अनावरण

दक्षिण भारत का पहला आर्यसमाज—आर्यसमाज में यह धारणा रही है कि किल्ला धारूर (महाराष्ट्र) का आर्यसमाज दक्षिण भारत का प्रथम आर्यसमाज है। **आर्यसमाज के सात खण्डों के इतिहास ने भी इस भ्रम की और पुष्टि कर दी।** उसमें भी यही लिखा मिलता है कि स्वामी नित्यानन्द जी महाराज की मैसूर प्रचार-यात्रा के समय कर्नाटक में आर्यसमाज पहुँचा। कर्नाटक आर्यसमाज का इतिहास लिखते समय हमने प्रथम बार इस भ्रम का सबल प्रमाणों से प्रतिवाद किया। फिर सन् २०१३ में ऋषि के सम्पूर्ण जीवन चरित्र के दूसरे भाग का लेखन कार्य करते समय कुछ और महत्त्वपूर्ण स्रोत हाथ लगे तो इस विषय को और विस्तार से उसमें उठाया। वैसे उस ग्रन्थ के प्रथम भाग में **आर्यसमाजों की सूची में भी आर्यसमाज मैंगलूर की चर्चा की थी। सन् १९८३ में परोपकारी मासिक के एक अंक में भी हमने यह सूची प्रकाशित की थी, परन्तु सात खण्डी इतिहास के लेखकों ने इस खोज का लाभ न उठाया।**

आर्यसमाचार मेरठ में छपा—संवत् १९४२ के चैत्र मास के अंक में एक समाचार पढ़ने को मिल गया कि मैंगलूर (कर्नाटक) का एक युवक अपने कुछ मित्रों के संग सन् १८७५ में मुम्बई यात्रा पर गया। वहाँ ऋषि के व्याख्यानों की धूम मची हुई थी। इस कन्नड़ मेधावी युवक ने भी ऋषि के व्याख्यान सुने। उसे नवीन ऊर्जा प्राप्त हुई। उसका जीवन पलट गया। उसने ऋषि जी से भेंट की, संवाद किया। ऋषि का कुछ साहित्य क्रय किया। वेदभाष्य का सदस्य बन गया।

कर्नाटक लौटते ही उसने अदम्य उत्साह के साथ दक्षिण भारत के

प्रथम आर्यसमाज की स्थापना कर दी। अब एक उलझन का समाधान करना शेष था। ऋषि सन् १८७५ में दो बार मुम्बई पधारे। **यह युवक कौन-सी यात्रा में ऋषि-दर्शन का गौरव प्राप्त कर सका?** आर्यसमाचार से ही हमें इसका एक सूत्र हाथ लग गया। इस युवक ने इंग्लैण्ड के प्रिंस आफ़ वेल्ज़ की भारत-यात्रा के समय नवम्बर १८७५ के दूसरे सप्ताह ऋषि को सुना। राजकुमार का जलपोत ८ नवम्बर को मुम्बई के सागर तट पर पहुँचा था। **यह प्रामाणिक जानकारी पं० लेखराम वैदिक मिशन के उत्साही स्तम्भ आर्यवीर राहुल जी ने उपलब्ध करवाने का श्रम करके यश लूट लिया।**[१]

अब उस युवक के नाम की खोज में हम जुट गये। ईशकृपा से हमारा पुरुषार्थ पुनः फलीभूत हुआ। 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक' की एक फ़ाइल हमारे हाथ लगी। इस आर्यवीर का शुभ नाम था श्री रंगपामंगीश शर्मा, भूपति मंजेश्वर ग्राम निवासी। देश जाति का दुर्भाग्य कहिये कि धर्म धुन के धनी इस युवक का छोटी आयु में ही निधन हो गया। १६ अगस्त सन् १८९२ को उसने नश्वर देह का त्याग कर दिया।

जिस दिन मृत्यु हुई उस दिन भी उसने प्रातः सात बजे स्नान करके ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना के उपरान्त परोपकारिणी सभा अजमेर, आर्य अनाथालय फ़ीरोज़पुर आदि संस्थाओं के लिए अपने हाथ से दान निकाला। १७ अगस्त १८९२ को पूर्ण वैदिक रीति से आपका दाहकर्म संस्कार किया गया।[२]

यहाँ यह भी बताना उपयोगी रहेगा कि कर्नाटक का सबसे पहला युवक जिसने ऋषि दर्शन किये और उनके प्रवचन सुनकर प्रभावित हुआ वह था श्री कृष्ण शास्त्री। वह आर्यसमाज से तो नहीं जुड़ा, परन्तु ऋषि भक्त अवश्य था। दर्शनों का ऊँचा विद्वान् और टीकाकार हुआ है। उसने पूना में श्री महाराज के दर्शन करके स्वयं को धन्य-धन्य माना। वह कन्नड़ व मराठी दोनों भाषाओं का जाना पहचाना लेखक था।

---

१. द्रष्टव्य, The Prince of Wales Tour by William Russel.

२. द्रष्टव्य, 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक' अक्तूबर १८९२ का अंक पृष्ठ ९-१०

मुम्बई की तीसरी यात्रा

पूना से सातारा होकर श्री स्वामी जी १६ अक्तूबर १८७५ को तीसरी बार मुम्बई पधारे और २६ जनवरी सन् १८७६ तक अपने प्रचार कार्य तथा संगठन को सुदृढ़ करने में लगे रहे।

ब्राह्मसमाजियों से यहाँ प्रश्नोत्तर हुए। वेद-विषय में उनकी शंकाओं का युक्तियुक्त सप्रमाण उत्तर दे दिये गये, परन्तु निरुत्तर होकर भी किन्हीं विशेष कारणों से वे लोग सत्य को स्वीकार न कर सके। अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रभाव कहें या फिर हीन भावना समझें। स्वयं को 'स्वतन्त्र विचारों' का कहना भी एक फ़ैशन-सा हो गया है।

मुम्बई में एक व्याख्यान में कहा कि राजाओं के विनाश का कारण उनके परामर्शदाता हैं जो चार प्रकार के हैं, ज्योतिषी, तेली, ऊँट वाला व चौथा हिजड़ा। देश के विनाश का कारण यही है कि सोच ही विनाशकारी है—तेल देखो तेल की धार देखो, देखो तो ऊँट किस करवट बैठता है, इत्यादि।

मुम्बई से श्री महाराज बड़ौदा गये। वहाँ दीवान टी० माधवराव ने आपकी समुचित व्यवस्था की। देशोन्नति पर व्याख्यान देकर बड़ों-बड़ों को चकित कर दिया। पण्डित शास्त्रार्थ की चर्चा चलाते तो थे, परन्तु उनमें घबराहट थी। यहाँ के ब्राह्मणों ने सब बड़े लोगों व राजमाता यमुनाबाई को ऋषि से मिलने व सहयोग करने से रोका, परन्तु इनकी दाल न गली। राजमाता यमुनाबाई का सचिव ऋषि से राजमाता के लिए समय माँगने आया। **सतर्क बाल ब्रह्मचारी ने बड़ौदा जैसे बड़े राज्य की राजमाता को दर्शन देना स्वीकार न किया।**

महिमा अखण्ड ब्रह्मचर्य की महान् है।

श्री टी० माधवराव ने अपने गृह पर एक सहस्र रुपये भेंट करने चाहे, परन्तु ऋषि ने भेंट स्वीकार नहीं की।

एक प्रभावशाली व्यक्ति ने पं० कृष्णराम से कहा कि स्वामी जी मेरे श्वसुर के अभियोग का निर्णय करवा दें तो मैं बीस सहस्र रुपये वेदभाष्य के लिए दान दूँगा। यह सुनकर ऋषिजी ने **अपने भक्त को धन का**

प्रलोभन देने वाली बात पर फटकार लताड़ लगा दी।

अब अहमदाबाद से भरुच, सूरत, बलसाड़, वसई होते हुए ऋषि मार्च के प्रथम सप्ताह मुम्बई पहुँचे गये। पहली मई तक वहाँ रुके।

हरियाणा के रायपुर रानी के पं० रामलाल का मुम्बई आना-जाना था। पण्डितों ने गट्टूलाल के गृह पर पं० रामलाल का २८ मार्च १८७६ के दिन प्रतिमा-पूजन विषय पर शास्त्रार्थ करवाया। शास्त्रार्थ के मध्यस्थ श्री भूजाऊ शास्त्री जी ने शास्त्रार्थ की समाप्ति पर सभा में स्पष्ट शब्दों में घोषणा की कि **"आज पं० रामलाल प्रतिमा-पूजन को वेदोक्त सिद्ध नहीं कर सके।"**

इस सत्य कथन के लिए विद्वान् मध्यस्थ को पण्डितों ने जितना प्रताड़ित कर सकते थे सो किया।

इन्दौर-यात्रा

ऋषि जी पहली मई को इन्दौर पहुँचे[१] और ९ मई १८७६ को फर्रुखाबाद के लिए चल दिये। यहाँ तालाब पर डेरा लगाया गया। राज्य के बड़े-बड़े लोग आपके व्याख्यान उपदेश, सुनने को आते थे। महाराजा तुकाजीराव मिले तो कई बार, परन्तु आपने केवल एक ही व्याख्यान सुना। महाराजा शैव मत को मानते थे, परन्तु ऋषि का अच्छा सत्कार किया। ऋषि ने महाराजा को राजधर्म पर एक सारगर्भित उपदेश लिखकर दिया। एक शास्त्रार्थ का आयोजन होते-होते टल गया।

जब महाराजा ने शाल, दुशाला भेंट करना चाहा। ऋषि ने कहा— **"मैं इसे क्या करूँगा ? जिसे शीत हो उसे दीजिये। मैं सबके शाल लेता जाऊँ तो मैं भी गृहस्थों के सदृश हो जाऊँगा।"**

इन्दौर के दीवान रघुनाथ राव जी ऋषि के वैदिक सिद्धान्तों पर विश्वास रखते थे। आपसे ऋषि की प्रथम व अन्तिम भेंट यहीं हुई थी। गुरुकुल

---

१. 'टाइम्स आफ इण्डिया' के संवाददाता ने ३० अप्रैल सन् १८७६ के अंक में "स्वामी जी आज सायंकाल बनारस जाएंगे" लिखा था। भूल से इन्दौर की बजाय बनारस लिखा गया। पहली को इन्दौर पधारे यह ठीक है।

कांगड़ी के अंग्रेज़ी पत्र में slip of the pen लेखनी की फिसलन के कारण इन्दौर की बजाय मैसूर लिखा गया। हमने स्वामी ऋतस्पति जी के सहयोग से इस तथ्य की पूरी जाँच कर ली। दोनों की भेंट इन्दौर में ही हुई थी।

इस सज्जन ने श्री देवेन्द्रबाबू जी को स्वामी जी के सम्बन्ध में यह लिखकर दिया था—**"स्वामी जी उत्कृष्ट वक्ता थे। उनका स्वर उच्च, गम्भीर और मधुर था। उनकी बोलने की रीति तेजःपूर्ण और उनका आक्रमण तीव्र होता था। उनकी वाणी एकदम लोगों के हृदय में प्रवेश कर जाती थी, इसलिए वे विरोधी पक्ष के लोगों को असह्य हो जाती थी और वे बीच से ही उठकर चले जाते थे।"**

उत्तरप्रदेश के नगरों में

९ मई सन् १८७६ को स्वामी जी महाराज संयुक्त प्रान्त (अब उत्तप्रदेश) के फर्रुखाबाद नगर में पाँचवीं बार पधारे। विश्रान्त घाट पर ही डेरा डाला। पादरियों से संवाद धर्म-चर्चा हुई। वैदिक पाठशाला उद्देश्य से भटक गई। स्वामी जी ने इसको निरुपयोगी जानकर तोड़ दिया। अनेक लोग संस्थाएँ स्थापित करके उनके मोह में फंसकर उनके निरुद्देश्य होने पर भी उनका भार ढोते रहते हैं। ऋषि दयानन्द की यह विशेषता थी कि वे निर्णय लेने में सक्षम थे।

तोप के मुँह के आगे बांध दे तो...

फ़र्रुखाबाद के गोरे पादरी लूकस जी ने यह लिखकर बताया कि जब उनसे पूछा गया कि यदि तोप के मुँह के आगे बाँधकर आपसे कहा जाए कि या तो मूर्ति के सामने शीश झुकाओ अन्यथा तुम्हें उड़ा देंगे, तब आपका क्या उत्तर होगा?

इस पर आपने कहा—**"मैं कहूँगा उड़ा दो"** वे ऐसे निडर वीर नर थे। पादरी जी ने आपके बलवान् तेजस्वी शरीर की बहुत प्रशंसा की।

यहाँ से स्वामी जी काशी, जौनपुर, अयोध्या आदि नगरों में फेरी डालते हुए २६ सितम्बर को लखनऊ पधारे। अयोध्या के सरजूबाग में

चौधरी गुरचरणलाल के मन्दिर की पाठशाला में ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का लेखन कार्य आरम्भ किया।

लखनऊ में सरदार विक्रमसिंह अहलूवालिया की कोठी में डेरा किया। यहाँ एकेश्वरवाद तथा ईशोपासना पर प्रभावशाली व्याख्यान दिया। श्री बृजलाल के प्रश्नों के उत्तर दिये। वर्ण-व्यवस्था को गुण, कर्म के अनुसार बताया। यह शंका समाधान आज भी पठनीय है।

मुरादाबाद का वृत्तान्त

शाहजहाँपुर व बांस बरेली में धर्म प्रचार व शास्त्र चर्चा करते हुए आप नवम्बर १८७६ में मुरादाबाद पधारे। मुंशी इन्द्रमणि जी की आपसे अलीगढ़ में भेंट हुई थी। उन्हीं के निमन्त्रण पर यहाँ आना हुआ। यहाँ कुछ युवकों ने आपसे यज्ञोपवीत लिया। समाज बनकर टूट भी गया। यहाँ पादरी पार्कर से शास्त्रार्थ भी हुआ। सेठ श्यामसुन्दर जी साहू के दुर्व्यसनों में फंसे होने की भनक पड़ने पर उनके यहाँ भोजन करना अस्वीकार कर दिया।

राजा जयकिशनदास की कोठी पर स्वामी जी का व्याख्यान हुआ। व्याख्यान के पश्चात् पादरी पार्कर जी व डिप्टी इमदाद अली का आदम के विषय में विवाद हो गया। स्वामी जी मौन रहे। पार्कर जी ने आदम को पापी कहा तो मौलवी इमदाद अली ने इस पर आपत्ति की और कहा— ऐसा मत कहें वह हमारे पैगम्बर थे।

दिल्ली दरबार

आप कर्णवास, अतरौली व छलेसर होकर दिल्ली दरबार के अवसर पर १७ दिसम्बर १८७६ से लेकर १६ जनवरी १८७७ तक कुतुब रोड पर शामियाने गाड़कर दरबार में आने वाले सब प्रकार के लोगों से मिलते-जुलते रहे। कई पण्डितों से शास्त्रार्थ हुआ। ईरान के एक मौलवी भी शास्त्रार्थ करने आये। राजाओं महाराजाओं तक अपना विज्ञापन पहुँचाया। कई मिलने भी आये। ऋषि चाहते थे कि सब राजा महाराजा लोग एक दिन मिलकर उनका व्याख्यान सुनलें, परन्तु ऐसा न हो सका।

एकता सम्मेलन—आपने सुधारकों-विचारकों व नेताओं को बुलाकर एक एकता सम्मेलन किया। **यह भारत में पहला ऐसा प्रयास था,** परन्तु समय पूर्व था। सो सफल न हो सका। गोराशाही भी इससे चौंक गई। भला वे लोग क्यों एकता होने देते? इसमें श्री अलखधारी, बाबू केशवचन्द्र सेन, बाबू नवीनचन्द्र राय, मुंशी इन्द्रमणि, सर सैयद अहमद ख़ाँ तथा चिन्तामणि जी ने भाग लिया। किसी ईसाई ने इसमें भाग नहीं लिया। 'इण्डियन मिरर' कलकत्ता ने इस प्रयास की प्रशंसा की।

इस दरबार के अवसर पर ऋषि दुर्व्यसनों के निषेध का प्रचार करते रहे। इस अवसर पर कर्णवास, छलेसर, अलीगढ़ के ठाकुरों ने सोत्साह ऋषि को बहुत सहयोग किया। यहीं पर श्री कन्हैयालाल अलखधारी आदि ने पंजाब आने का निमन्त्रण दिया और रेवाड़ी के राव युधिष्ठिर सिंह भी यहीं ऋषि-दर्शन करके आनन्दित हुए। आपने भी भक्तिभाव से रेवाड़ी पधारने के लिए करबद्ध प्रार्थना की। रेवाड़ी भी तब पंजाब में ही था।

एक मास मेरठ में निवास रहा—१६ जनवरी से १५ फ़रवरी १८७७ तक मेरठ में निवास करके मिलने वाले धर्म-प्रेमियों से धर्म-चर्चा व शंका-समाधान करते रहे। कोई व्याख्यान इस यात्रा में नहीं दिया। सारे नगर में विरोधियों ने यह प्रचार करने में कोई कमी न छोड़ी कि एक नास्तिक साधु आया है जो मूर्त्तिपूजा व मृतकों के लिए श्राद्ध का खण्डन करता है।

ऋषि जी १५ फ़रवरी को सहारनपुर पहुंचे। ११ मार्च तक यहाँ पर डेरा रहा। कुछ ग्रन्थों में ४ फ़रवरी को मेरठ से प्रस्थान करना छपा है। **यह मुद्रण दोष है। १४ की बजाय ४ फ़रवरी छप जाना एक सामान्य-सी भूल है।** मेरठ से १३ फ़रवरी को लिखा गया महर्षि का एक पत्र हमारे कथन की पुष्टि करता है।

मुंशी चण्डीप्रसाद अम्हेटा निवासी के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का यहीं से उत्तर दिया गया। मांस, मदिरा, भूतप्रेत, फलित ज्योतिष, पर्दा-प्रथा आदि का खण्डन किया। कहा—विधवा का पुनर्विवाह होना चाहिये। पुनर्जन्म के सिद्धान्त की पुष्टि की। ब्रह्मा के चार मुख नहीं थे। चारों वेद उसके मुख हैं। ईश्वर सर्वव्यापक है। वह अज्ञानियों से दूर है।

सहारनपुर के एक मन्दिर में कुछ व्याख्यान भी हुए फिर शिवालय में जहाँ स्वामीजी का डेरा था, वहाँ कुछ व्याख्यानों की व्यवस्था की गई। दार्शनिक विषयों पर तीन-तीन और चार-चार घण्टे तक व्याख्यान दिये। श्रोता मन्त्रमुग्ध होकर सुनते रहते थे। चित्रगुप्त मन्दिर में एक व्याख्यान सुखी कौन ? दु:खी कौन ? विषय पर हुआ। आपको विरोध का तो सर्वत्र सामना करना पड़ा। प्रचार व डेरे के लिए कई स्थान बदलने पड़े।

यहीं पर आपको मेला चाँदापुर का निमन्त्रण मिला था। आप वहाँ **दो सप्ताह तक शास्त्रार्थ रखने के पक्ष में थे। दो दिन के लिए आप वहाँ जाने को तैयार नहीं थे।** आप सहारनपुर से शाहजहाँपुर गये और वहाँ से बिहारी बाबू (बनमाली) को साथ लेकर १५ मार्च को चाँदापुर के ऐतिहासिक शास्त्रार्थ में भाग लेने के लिए वहाँ पहुंच गये।

हम चाँदापुर शास्त्रार्थ की चर्चा यहाँ नहीं कर रहे हैं। उसके आवश्यक अंश आगे दिये जाएँगे।

रूसी लेखक वी० बरोडोव (V. Brodov)
की दृष्टि में

"He criticised such features of Hinduism as idol worship, the notion of an illusory nature of all that is, the inescapable power of fate and man's impotence in the face of fate. Condemning the idea of passive humility in the face of fate, the reformer called upon his followers to act vigorously."[1]

अर्थात् स्वामी दयानन्द ने मूर्त्तिपूजा, जगत् मिथ्या (मायावाद), अपरिहार्य भाग्यवाद की शक्ति के सामने की मानवीय नपुंसकता सरीखे हिन्दू धर्म के विचारों की आलोचना की। हिन्दुओं की क्रियाशून्य नम्रता दीनता के विचार की भर्त्सना करते हुए आपने अपने शिष्यों को तेजस्विता से पुरुषार्थ करने की शिक्षा दी।

१. द्रष्टव्य, Indian Philosphy in Modern Times by V. Brodov, P. 182.

पंजाब यात्रा—कुछ प्रेरक प्रसंग

ऋषि दयानन्द ने मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी आदि कई सज्जनों की विनती व प्रेरणा से ३१ मार्च १८७७ को लुधियाना से अपनी पंजाब यात्रा आरम्भ की। यहाँ लाला वंशीलाल के उद्यान में आपने आसन जमाया। यहाँ जटमल जी खज़ानची के निवास पर लगातार सात व्याख्यान दिये। कहा—बीच में कोई नहीं बोलेगा। आठवें दिन सबकी शंकाओं का समाधान कर दिया जावेगा। ईसाइयों के पत्र नूरअफ़शाँ ने आपके प्रचार के विस्तृत समाचार देते हुए लिखा—"**यह चाहते हैं कि एक परमेश्वर के अतिरिक्त और किसी की पूजा उपासना न की जावे।.... यह विश्वास है कि इनके उपदेश से हिन्दुओं को बहुत लाभ होगा।**"[१]

एक दिन पादरी वेरी (Wherry), श्री कारस्टीफ़न कमिश्नर मिलने आये। प्रश्नोत्तर करते हुए इन लोगों ने श्री कृष्ण जी के चरित्र पर कुछ आक्षेप किये। ऋषि ने उत्तर में कहा कि ये सब दोष मिथ्या हैं। पं० श्रद्धाराम फिलौरी भी मिलने आया। कुछ हल्ला भी किया फिर लाहौर चला गया। यहाँ कुछ लोग धर्मच्युत होने से बच गये।

स्वामी जी एक रात जालन्धर सरदार सुचेतसिंह की हवेली में रुके। १९ अप्रैल को लाहौर आगमन हुआ। यहाँ रत्नचन्द दाढ़ीवाला के बाग में डेरा किया। मूर्त्तिपूजकों के दबाव में आकर यहाँ से शीघ्र डेरा उठवा दिया गया।

यहाँ शिवनारायण अग्निहोत्री प्रायः मिलने आया करता था। धर्म-चर्चा, प्रश्नोत्तर होता रहता था। एक दिन उसने एक पुष्प स्वामी जी को भेंट किया। आपने कहा—"यह क्यों तोड़ लाये?" उसने कहा—"आपके लिए लाया हूँ।" **श्री स्वामी जी पर्यावरण की शुद्धि के लिए फूल तोड़ना पाप मानते थे।**

---

१. इसी ईसाई पत्र के संस्थान में पं० श्रद्धाराम चर्च की सर्विस करते रहे।

अन्धविश्वास, कुरीतियों के उन्मूलन तथा वैदिक धर्म के मण्डन में अत्यन्त प्रभावशाली व्याख्यान देते रहे। भारी भीड़ सुनने को आती थी। वेद अनादि हैं। सबके लिए हैं। होम हवन का बहुत प्रचार किया। बहुदेवतावाद का धारदार खण्डन किया। ब्राह्मसमाज के मन्दिर में भी दो व्याख्यान दिये। वेदों को ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध करने पर ब्राह्मसमाजी बिगड़ गये। अब डॉ० रहीम खाँ की कोठी में डेरा लगाकर प्रचार करते रहे। सब वेद विरुद्ध मतों की समीक्षा (इस्लाम की भी) निडर होकर किया करते थे।

मूर्त्तिपूजक ऋषि के घोर विरोधी बन गये। पं० श्रद्धाराम इन विरोधी ब्राह्मणों के नेता बन गये। एक सभा का गठन भी कर लिया। बरादरी का दबाव डालकर पं० भानुदत्त सत सभा वालों को भी इस सभा में खींच लाये। पादरी हूपर के वेद-विषयक प्रश्नों के यथोचित्त उत्तर देकर सबको शान्त किया।

स्त्रियों को कहा साधु को गुरु मत बनाओ। अपने पतियों को यहाँ भेजो। उनसे हमारा उपदेश सुन लेना।

सौदा पटने में ही नहीं आता था

महर्षि सन् १८७७ में पंजाब पधारे। आपने अपनी यात्रा को लुधियाना से आरम्भ किया। लुधियाना के पश्चात् आप पंजाब की राजधानी लाहौर पहुँचे। हम लाहौर की एक घटना पं० चमूपति जी के शब्दों में यहाँ देते हैं।

"१९ अप्रैल को ऋषि लाहौर पधारे। पहले बावली साहेब, फिर ब्राह्म मन्दिर, फिर रत्नचन्द के बाग़ और अन्त में डॉ० रहीम ख़ाँ की कोठी में डेरा हुआ। व्याख्यान का प्रबन्ध भी डेरे के साथ ही किया जाता था। परिव्राजक मानो हवा के घोड़े पर सवार था। **उसे टिक कर कौन बैठने देता था? जिस के यहाँ ठहरे, उसी के मत का खण्डन कर दिया। पूछा तो कहते हैं—साधु के पास सत्य के सिवाय क्या है जो वह दे?**

कोठी वालों के उपकार का प्रत्युपकार बेलाग सत्यता द्वारा किया जा रहा था। उपकारी उपकार करते थे पर प्रत्युपकार की बात

नहीं ला सकते थे। सत्य महँगा था, कोठियाँ सस्ती। या कोठियाँ महँगी थी, सत्य सस्ता। सौदा पटने में नहीं आता था। स्थित प्रज्ञ साधु कैसे स्थित-प्रज्ञता से इधर से उधर भटक रहा था? रोज़-रोज़ का यही भटकना उस की समाधि थी।''[१]

ईश्वर को क्या बनाओगे?

लाहौर में मन्त्री शारदाप्रसाद भट्टाचार्य ने यह प्रस्ताव रखा कि ऋषि को समाज का परम सहायक बनाया जाय। इस पर ऋषि ने पूछा—"**ईश्वर को क्या बनाओगे? परम सहायक तो वही है।**" तब स्वामी जी ने कहा—"दयानन्द को समाज के सहायकों में रख लो।"

ऋषि का वैदिक दृष्टिकोण स्पष्ट है कि **कोई भी मनुष्य परम पूज्य वा परम सहायक नहीं हो सकता।**

लाहौर में केवल एक ईश्वर की ही उपासना पर बहुत सुन्दर भाषण करते हुए ईश्वरेतर की, मूर्तियों की पूजा का अकाट्य तर्कों से खण्डन सुनकर एक ब्राह्मसमाजी नेता ने लाला साईंदास से तभी कहा था कि मेरा तो सारा जीवन ही व्यर्थ गया जो मैंने जड़पूजा का कभी ऐसा खण्डन नहीं किया।

ज्ञानी दित्त सिंह ने नवीन वेदान्त पर कुछ चर्चा की। उसका एक ट्रैक्ट छपा मिलता है जिसमें ऋषि से तीन शास्त्रार्थ करने की बात लिखी है। **उसने उसी पुस्तिका में स्वयं को वेदान्ती लिखा है।** उसके शास्त्रार्थ करने की किसी ने भी चर्चा नहीं की। कोई प्रमाण नहीं मिलता। यह भ्रामक प्रचार है। लोग मूर्त्तिपूजा छोड़ते गये। **एक ने ठाकुरों की चौकी सड़क पर पटक दी।**

आर्यसमाज की स्थापना—स्वामी जी की इसी यात्रा में २४ जून १८७७ को लाहौर में पंजाब के पहले आर्यसमाज की स्थापना की गई। मुम्बई वाले नियमों का सरलीकरण करके केवल दश नियम रखे गये।

---

१. आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का सचित्र इतिहास, लेखक पं० चमूपति, पृष्ठ ङ।

अमृतसर में प्रचार की धूम मच गई

५ जुलाई से १२ सितम्बर तक आपने अमृतसर में वैदिक धर्म प्रचार की धूम मचा दी। लोगों की टोलियाँ की टोलियाँ दर्शनार्थ आने लगीं। यहाँ के कई सज्जनों ने लाहौर में आपके दर्शन किये और उपदेश भी सुने थे। बीच-बीच में कभी-कभी एक दिन के लिए लाहौर भी जाते रहे। १८ अगस्त से २६ तक गुरदासपुर प्रचारार्थ चले गये। **गुरुमन्त्र मांगने वालों को यही कहते थे कि गायत्री ही गुरुमन्त्र है।**

रावलपिण्डी के भाई अतरसिंह ने लाहौर में लोगों से ऋषि की प्रशंसा सुनी तो अमृतसर दर्शन करने आ गया। उसने रावलपिण्डी पधारने की प्रार्थना की जो स्वीकार कर ली गई। १२ अगस्त के दिन अमृतसर में आर्यसमाज स्थापित हो गया। पण्डितों ने अमृतसर के सबसे बड़े विद्वान् पं० रामदत्त से कहा कि वह स्वामी जी से शास्त्रार्थ करें। आपने बहुत कहा कि मैं वेद नहीं जानता। पण्डित वर्ग फिर भी उनको शास्त्रार्थ करने का आग्रह करता रहा। तंग आकर वह हरिद्वार चले गये।

उस समय मिशन स्कूल के ४० विद्यार्थी जो अदीक्षित ईसाई थे। प्रार्थना सभा बनाकर रविवार को अपनी सभा किया करते थे। ऋषि के व्याख्यान सुनकर सब ईसाई मत में जाने से बच गये।

ट्रिब्यून दैनिक के संस्थापक सरदार दयालसिंह मजीठिया से वेद के ईश्वरीय ज्ञान होने के विषय पर बातचीत हुई। सरदार जी ब्राह्मसमाजी थे। सरदार जी बहुत लम्बा बोलते थे। ऋषि जी ने कहा—"आप अपने गुरु केशवचन्द्र से मेरी बात करवा दें। पूरा शास्त्रार्थ करके सन्तुष्टि प्राप्त करलें।" सरदार जी रुष्ट होकर चले गये फिर कभी बात नहीं की।

यहाँ यह कहा कि विधवा का विवाह विधुर से होना चाहिए।

यहाँ एक मौलवी से शास्त्रार्थ होना था। स्वामी जी ने कहा कि पारिभाषिक शब्दों के ठीक-ठीक अर्थ के लिए एक अरबी जानने वाले की व्यवस्था की जावे। अमृतसर आर्यसमाज ने लाला जीवनदास जी को पत्र लिखकर लाहौर से पादरी इमादुद्दीन को भेजने की व्यवस्था करने को कहा। वह तब अमृतसर न आ सके। इस कारण शास्त्रार्थ न हो सका।

खेद व दुःख का विषय है कि भारतीय जी आदि कुछ सज्जनों ने 'इमादुद्दीन' का नाम 'इमामुद्दीन' बना दिया। पं० लेखराम जी ने शुद्ध नाम लिखा है, परन्तु उनके ग्रन्थ में भी इन लोगों ने इमामुद्दीन करके ठीक नहीं किया।

गुरदारपुर में भी ८-९ दिन तक ऋषि ने अमृतवर्षा की। प्रतिमा-पूजन विषय पर शास्त्रार्थ करने के लिए दीनानगर से पं० लक्ष्मीधर व पं० दौलतराम को लाया गया। वहाँ के दो पौराणिकों की कृपा से वातावरण में कटुता पैदा हो गई। दीनानगर कौन-सा विद्या का केन्द्र था जो वहाँ से बड़े-बड़े पण्डित वे ले आते।

गुरदासपुर में भी आर्यसमाज स्थापित हो गया। यहाँ एक मौलवी से आवागमन पर वार्त्तालाप हुआ।

१३ सितम्बर से १७ अक्तूबर १८७७ तक ऋषि ने जालन्धर में रहकर धर्मप्रचार किया। संस्कार, श्राद्ध, ईश्वर, ईश्वरीय ज्ञान तथा आदि सृष्टि में युवा स्त्री-पुरुष उत्पन्न हुए इत्यादि विषयों को लेकर विचारोत्तेजक व्याख्यान दिये। अन्धविश्वासों का तीखा खण्डन किया गया। मृतक श्राद्ध पर भी एक प्रभावशाली व्याख्यान दिया।

ब्रह्मचर्य बल दिखा दिया

यहीं पर सरदार विक्रमसिंह की दो घोड़ों की बग्घी का पहिया कस कर पकड़ लिया। घोड़ों पर कोड़े बरस रहे थे, परन्तु बग्घी आगे न सरकी। सरदार जी ने पीछे मुड़कर देखा तो ब्रह्मचर्य बल का चमत्कार देख कर दंग रह गये। आप ही ने तो ऋषि जी से अपना ब्रह्मचर्य बल दिखाने का प्रमाण मांगा था।

जालन्धर में चमत्कार तथा पुनर्जन्म विषय पर मौलवी अहमद हसन से आपके दो शास्त्रार्थ हुए। इनके नियम आदि सब निश्चित करके इनका आयोजन किया गया। ऋषि जी ने कहा कि **सत्यासत्य के निर्णय के लिए शास्त्रार्थ किये जाएँ। हार-जीत का इन्हें प्रश्न न बनाया जाए।** शास्त्रार्थ लिखित हो। दोनों पक्षों के उन पर हस्ताक्षर हों। इनको प्रकाशित

किया जाए। सबने ऋषि के ये सुझाव स्वीकार किये। इन्हें फ़कीर मुहम्मद मिर्ज़ा ने सियालकोट से प्रकाशित किया। उसने अपने प्राक्कथन में मौलवी अहमद हसन के दिखावे व व्यवहार की निन्दा की है। ऋषि की सौम्यता, व्यवहार व मर्यादा पालन की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। हमने सियालकोट से छपे उन शास्त्रार्थों की स्कैनिंग करके सम्पूर्ण जीवन चरित्र में छपवा दिया है।

रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित शास्त्रार्थ संग्रह में सम्पादक महोदय ने शास्त्रार्थकर्ता मौलवी का नाम कुछ और ही दे दिया। ऐसी गढ़न्त से इतिहास प्रदूषित होता है। ऋषि ने तब यह भी कहा था कि एक-दो दिन में गम्भीर विषयों का निर्णय नहीं हो सकता। विचार-विमर्श शास्त्रार्थ होने से ही सत्यासत्य का निर्णय सम्भव है।

श्री स्वामी जी १७ अक्तूबर १८७७ को पुन: लाहौर पधारे और २६ अक्तूबर तक सक्रिय होकर प्रचार किया। यहाँ एक दिन कहा कि धन-सम्पदा का एक सीमा से अधिक बढ़ जाना जातियों व राष्ट्रों के पतन का कारण होता है। मिर्ज़ा फ़तहबेग से ईश्वरीय ज्ञान विषय पर शास्त्रार्थ हुआ। कहा वेद से लेकर ही ऋषियों के नाम रखे गये हैं। वेद के शब्दों के यौगिक अर्थ लिये जाने चाहिएँ। यह किन्हीं विशेष व्यक्तियों के नाम मत समझें।

ऋषि जी ने यहाँ ३०० आर्य पुरुषों के साथ ब्राह्मसमाज के १४वें वार्षिकोत्सव में भाग लिया। उस समय अघोरनाथ बाबू उपासना करवा रहे थे। वह वेदी से उठे। आपके चरण में पड़े और गले लगकर मिले। उस समय के प्रत्यक्षदर्शी मेहता राधाकिशन ने ऐसा लिखा है।

आर्यसमाज लाहौर के रजिस्टर में यह लिखा मिला है कि ऋषि तीसरी बार १९ अक्तूबर को अमृतसर पधारे। लाहौर के कई सभासद भी साथ थे। सत्संग में स्वामी जी का भी व्याख्यान हुआ।[१]

---

१. अमृतसर की इस यात्रा का सप्रमाण स्कैनिंग करके सम्पूर्ण जीवन चरित्र, भाग-२, पृष्ठ १०४ पर दिया गया है और किसी ग्रन्थ में नहीं।

फ़ीरोज़पुर आगमन

लाहौर तत्कालीन पंजाब की राजनीतिक, सांस्कृतिक व शैक्षणिक राजधानी थी। लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना से पंजाब के अन्य-अन्य नगरों में स्वामी जी की चर्चा होने लगी। उन दिनों फ़ीरोज़पुर में एक हिन्दू सभा नाम की संस्था के प्रधान लाला मथुरादास जी ने ऋषि की मान्यताओं व विचारों के बारे लाहौर से आये श्री रघुवंश सहाय के मुख से बहुत कुछ सुना तो लाला गोविन्दलाल को लाहौर भेजा। आप स्वामी जी महाराज को फ़ीरोज़पुर साथ लेते आये। यहाँ २६ अक्तूबर से ४ नवम्बर तक आपने उपदेश, व्याख्यान, शंका-समाधान व शास्त्रार्थ करके वैदिक धर्म का डंका बजाया।

यहाँ लाला मथुरादास जी ने आपके निवास के लिए एक विशेष मकान तैयार करवाया, परन्तु भीड़भाड़ व आबादी में होने के कारण आप वहाँ नहीं रहे। आप घरों से दूर एकान्त स्थान चाहते थे सो तोपख़ाना के सामने एक कोठी में डेरा लगाया। यहाँ आठ व्याख्यान हुए। सायंकाल को प्रचार हुआ करता था। एक दिन प्रश्नोत्तर के लिए रखा गया।

विनम्रता-बड़प्पन

पटियाला के मौलवी करामत अली ने कुछ प्रश्न पूछे। उनको समुचित उत्तर दिये। पं० कृपाराम ने प्रश्न करने चाहे। ऋषि कुर्सी पर बैठे थे। उसने कहा—"आप कुर्सी पर बैठे हैं, मैं खड़े-खड़े आपसे कैसे प्रश्न करूँ।" उसके लिए कुर्सी मंगवाई गई। कुर्सी लाने में कुछ देर हो गई तो स्वामी जी ने कहा—"**आप कुर्सी के बिना भी बोल सकते हैं यदि मेरे कुर्सी पर बैठने से आपको परेशानी हो रही है तो मैं भी नीचे बैठ जाता हूँ।**"

छावनी भर के ब्राह्मणों ने भी लिखित रूप में कई प्रश्न दिये। अवैदिक मतों का खण्डन तथा वैदिक धर्म की श्रेष्ठता पर व्याख्यानों का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। हिन्दू सभा का नाम विधिवत् आर्यसमाज रखा गया। भक्त स्वरूपसिंह ने योग विषय में बहुत चर्चा की और बहुत कुछ सीखकर तृप्त हो गया।

यह स्मरण रहे कि उपर्युक्त लाला मथुरादास जी ने ही ऐतिहासिक आर्य अनाथालय की स्थापना की थी। आपने ही ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का सार उर्दू में छपवाया। श्री भारतीय जी का यह कथन निराधार है कि आपने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का उर्दू अनुवाद करके छपवाया था।

लाहौर होकर रावलपिण्डी पहुँचे

स्वामी जी ५ नवम्बर को लाहौर पहुँच गये। पाँच को सायंकाल समय आर्यसमाज में व्याख्यान दिया। ८ नवम्बर को रावलपिण्डी पहुँचे। २६ दिसम्बर तक इसी नगर में सन्देश, उपदेश देते रहे। इस नगर में आपका डेरा एक पारसी की कोठी में रहा। उसका नाम जमशेदजी था। अंग्रेज़ी में उसकी सब कम्पनियों में Jamsetji लिखा मिलता है। 'प्रकाश' साप्ताहिक के पुराने एक अंक में भी यही नाम मिला। जीवन-चरित्रों में भूलवश यह नाम प्राय: अशुद्ध छपा मिलता है। हमने सम्पूर्ण जीवन चरित्र में शुद्ध नाम की सप्रमाण जानकारी दे दी है।

ईसाइयों से, ब्राह्मणों से शास्त्रार्थ प्रश्नोत्तर होते रहे। उपस्थिति लगातार बढ़ती गई। कोई पौराणिक पण्डित शास्त्रार्थ के लिए आगे न आया। कुछ एक ने श्रद्धाराम जी को खड़ा करने की सोची तो कई एक ने कहा कि जब वह लाहौर में स्वामी जी के सामने नहीं आया तो यहाँ क्या आएगा?

एक दिन कृपाराम ने आते ही टाँगें व पाँव दबाने आरम्भ कर दिये। एक-एक अंग को हाथ लगाकर उसका नाम पूछता गया। स्वामी जी बताते गये। फिर कहा जब यह हाथ, पैर, आँख व सिर आदि हैं तो फिर स्वामी दयानन्द किसका नाम है? ऋषिवर ने उत्तर दिया कि गाड़ी के एक-एक जोड़ का नाम पहिया, धुरी आदि है, पूरी को गाड़ी कहा जाता है इसी प्रकार पूरे शरीर को भी एक नाम से पुकारा जाता है। रावलपिंण्डी में भी आपकी उपस्थिति में आर्यसमाज स्थापित हो गया।

स्वामी जी गुजरात जाने के लिए झेलम पहुँचे तो कुछ सज्जनों के अनुरोध पर यहीं रुककर २७ दिसम्बर से २३ जनवरी १८७८ तक प्रचार किया। यहाँ भी आर्यसमाज स्थापित हो गया। आर्य सिद्धान्तों पर कई व्याख्यान दिये। शास्त्रार्थ की रट लगाने वाले तो यहाँ कई थे, परन्तु सबको

चुप ही रहना पड़ा। वेदभाष्य के कार्य में पर्याप्त समय देते थे। स्त्रियों को उनके डेरे पर आने की अनुमति नहीं थी। मांस मदिरा आदि दुर्व्यसन कई व्यक्तियों ने छोड़ा। भक्तराज अमींचन्द गायक तो बढ़िया थे, परन्तु परस्त्रीगामी थे। ऋषि के कृपाकटाक्ष से "**अमींचन्द तुम हो तो हीरे, परन्तु कीचड़ में पड़े हो।**" आपका जीवन ही पलट गया। कुछ का मत यह है कि यह घटना गुजरात में घटी थी।

१३ जनवरी से २ फ़रवरी तक महाराज ने गुजरात नगर (पाकिस्तान) में पधारकर डेरा लगाया। कई पंडितों ने विरोध के स्वर निकाले। शास्त्रार्थ करने भी आये।

लुप्त कड़ी—गुजरात की दो घटनाएँ

श्री स्वामी जी ने महाराज १३ जनवरी से २ फ़रवरी सन् १८७८ तक पंजाब के गुजरात नगर को अपनी अमृतवर्षा से तृप्त किया। हम यहाँ इस नगर से जुड़ी केवल दो ही घटनाएँ दे सकेंगे। वैसे गुजरात का यह प्रवास बहुत घटनापूर्ण रहा। ऋषि के कृपाकटाक्ष से भक्तराज अमींचन्द जी का हृदय-परिवर्तन यहीं गुजरात नगर में हुआ था। कुछ लेखक इस घटना को झेलम से जोड़ते हैं। भक्तजी का सम्बन्ध इन दोनों ही नगरों से रहा था। घटना सुनिश्चित रूप से कहाँ घटी ? इसके बारे भ्रम का एक कारण यह भी तो है कि महर्षि झेलम के एकदम पश्चात् गुजरात आये थे। घटना तो निर्विवाद रूप से घटी। यह सब इतिहास प्रेमी व जीवनी लेखक स्वीकार करते हैं। भक्तजी के गीतों की अन्तःसाक्षी भी इसकी पुष्टि करती है।

गुजरात नगर से जुड़ी जो दो घटनाएँ हम यहाँ आगे देंगे यह किसी भी प्रचारित प्रसिद्ध जीवन चरित्र में नहीं मिलेंगी। ग्रन्थ का आकार बढ़ जाने से हम भी इसे सम्पूर्ण जीवन चरित्र में न दे सके। अब ऋषि जीवन की ये लुप्त कड़ियां इस पुस्तक में देते हुए हमें गौरव अनुभव हो रहा है। मेहता राधाकिशन जी जो ऋषि के समकालीन थे और उर्दू के अच्छे लेखक थे, आपने अपने उर्दू ग्रन्थ में ये प्रसंग दिये हैं। आप लिखते हैं—"ऋषि गुजरात में अपने डेरे पर कुछ महानुभावों के साथ बैठे हुए थे कि उधर

से एक विक्षिप्त फ़कीर निकल कर गया। स्वामी जी ने एक व्यक्ति से कहा, उसे बुला लाओ। वह फ़कीर (सम्भवतः मुसलमान था) आया। स्वामी जी उसको भुजा से पकड़कर एक पृथक् कमरे में ले गये। उस कक्ष का द्वार बन्द कर दिया गया। कुछ समय के पश्चात् जब द्वार खोला गया तो वह फ़कीर 'कामिल है, कामिल है' (पूर्ण पुरुष है, पूर्ण गुरु है) ये शब्द बोलता हुआ वहाँ से चलता बना।

पूछने पर महाराज ने बताया कि इसके गुरु ने योग की क्रियाएँ सिखलाते हुए कुछ चूक कर दी जिसका परिणाम यह हुआ कि यह व्यक्ति विक्षिप्त हो गया। उस चूक का सुधार कर दिया गया है और वह ठीक-ठीक होकर चलता बना है।''

'सियासत' पत्र के सम्पादक[१] का लेख

''इस्लाम ने मुझे जो सर्वोत्तम शिक्षा दी है वह ईश्वरेतर से भय की बेपरवाही (उपेक्षा) का सिद्धान्त है। मेरी दृष्टि में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का सबसे बड़ा गुण यह है कि वे अपने पालक प्रभु के अतिरिक्त किसी से भी डरते नहीं थे। उनके जीवन की अनेक घटनाएँ इसकी साक्षी देती हैं कि उनके हृदय में यदि भय था तो ख़ुदाय पाक (पवित्र प्रभु) का था। सांसारिक शक्तियाँ उन्हें आतंकित करने—डराने दबाने में असमर्थ थीं। संसार के प्रयास व दल बल उन्हें परास्त करने में बेबस (मजबूर) अशक्त थीं। इसके सम्बन्ध में—इस कथन की पुष्टि में केवल दो घटनाएँ देना ही पर्याप्त समझता हूँ।

पहली घटना मेरी भूमि गुजरात की है। शीत[२] ऋतु थी और स्वामी जी महाराज गुजरात में विराजमान थे। आपके व्याख्यानों की धूम मची हुई थी। दूर-दूर से श्रोता आपके व्याख्यान सुनने के लिए आते थे। एक

१. लेखक महोदय सियासत के अंक की तिथि व वर्ष देना भूल गये। सम्पादक का नाम था सैयद हबीब जी।

२. मुद्रणदोष से पुस्तक में ग्रीष्म ऋतु छप गया। यह कातिब की भूल है। महर्षि गुजरात में शीत ऋतु में आये थे। प्रूफ़ ध्यान से पढ़ा जाता तो यह चूक पकड़ में आ जाती।

दिन गुजरात के डिप्टी कमिश्नर महोदय जो कि एक अंग्रेज़ बुजुर्ग थे—पधारे। कुछ पादरी भी उनके संग आये थे। स्वामी जी का व्याख्यान ब्राह्मणों की कृपा से सनातन धर्म में उत्पन्न हो गये दोषों, कुरीतियों के विषय पर था। डिप्टी कमिश्नर महोदय तथा उनके साथ आये पादरी महानुभाव भाषण सुनकर गद्‌गद् हो गये और उन्होंने व्याख्यान की प्रशंसा करने में कंजूसी से कार्य नहीं लिया अर्थात् खुलकर प्रशंसा की।

दूसरे दिन पादरी महानुभाव तथा डिप्टी कमिश्नर फिर आये। महर्षि ने 'आधुनिक काल के ईसाइयों के निन्दित कर्म' विषय को चुना। आप इस प्रकार से बोले तथा बड़ी शान से बोले। आपने इस बात की कतई चिन्ता नहीं की कि ज़िला का डिप्टी कमिश्नर यहाँ विराजमान है और वह है भी ईसाई। आज पादरियों तथा डिप्टी कमिश्नर की प्रशंसा (वाह! वाह!!) निन्दा करने में बदल गई।

व्याख्यान की समाप्ति पर डिप्टी कमिश्नर ने श्री स्वामी जी से कहा—आप इतने जोश से अन्य मत का खण्डन करते हैं। हम तो शिक्षित हैं। सहन कर लेते हैं, परन्तु अज्ञानी हिन्दू आपकी हत्या कर देंगे। ऋषिवर ने उत्तर दिया—सत्य का प्रकाश करना मेरा उद्देश्य है। **हत्या का भय मुझे सत्य की अभिव्यक्ति से रोक नहीं सकता। यदि इस उद्देश्य की पूर्ति करते हुए मेरा बलिदान भी हो जाए तो यह सौभाग्य ही होगा।**[१]

दूसरी घटना इससे पहले दी जा चुकी है।

यहाँ पर राजकीय स्कूल के मुख्याध्यापक श्री बुचानन ने एक दिन खड़े होकर ब्राह्मणों की वकालत करते हुए प्रश्न किया—"ओ बाबा! तू इन बेचारों की, इन अन्धों की डंगोरी (लाठी) छीनता है। इसके बदले इन्हें देता क्या है।?"

ऋषि ने कहा—"**मैं वेद देता हूँ। योगाभ्यास देता हूँ।**"

पौराणिकों ईसाइयों सबके प्रश्नों के उत्तर देकर सभी को चुप करवा दिया। ऋषि पर यहाँ ईंटें भी बरसाई गईं।

१. द्रष्टव्य 'स्वामी दयानन्द और उनकी तालीम' लेखक मेहता राधाकिशन, पृष्ठ २३२-२३३

दो फ़रवरी से सात फ़रवरी तक वज़ीराबाद में आगमन हुआ। यहाँ भी निर्भय होकर प्रचार किया। विरोध की भी कमी नहीं थी। झगड़ा हुआ। आक्रमण भी हआ। नामी ब्राह्मण नगर ही छोड़ गये।

यहाँ से श्री महाराज गुजराँवाला के लिए प्रस्थान कर गये। चार मार्च तक वहाँ बहुत व्यस्त कार्यक्रम रहे। यहाँ पर ईसाइयों से एक महत्त्वपूर्ण शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ आगे भी होना था, परन्तु पादरी बुलाने पर भी न आये।

स्वामी जी ने यहाँ ब्रह्मचर्य पर एक उत्तम व्याख्यान दिया। आपने कहा—"है कोई यहाँ जो (हाथ उठाकर) मेरे हाथ को नीचा कर सके।" वहाँ कई पहलवान थे, परन्तु किसी को भी साहस न हुआ कि आगे आये। तब ऋषि की आयु ५३ वर्ष थी। **दर्शन विषय में एक एम०ए० बंगाली विद्वान् ने कहा कि ये ज्ञान का अथाह सागर हैं।**

दो मार्च से १२ मार्च तक लाहौर में नवाब नवाज़िश अली की कोठी में डेरा लगाया। वहाँ एक दिन इस्लाम की समीक्षा करने पर कुछ एक ने कहा—कोई आपको टिकने को स्थान नहीं देता। आप यहाँ इन्हीं के मत की समीक्षा करते हैं। आपने कहा—"मैं जिसे सत्य जानता व मानता हूँ उसी का उपदेश करता हूँ। मुझे परमेश्वर के अतिरिक्त किसी का भी भय नहीं है।"

मुलतान से पत्र प्राप्त होने पर आप १२ मार्च से १६ अप्रैल तक मुलतान नगर में अमृतवर्षा करते रहे। यह यात्रा सबसे महत्त्वपूर्ण रही। इसी नगर से आगे चलकर आपको मनीषी गुरुदत्त के रूप में एक मेधावी विचारक शिष्य मिला जिसने स्वल्प काल में पश्चिमी देशों व अमरीका में ऋषि की वैदिक विचारधारा पहुँचाने का इतिहास रचा। गायत्री महिमा पर आपके उपदेश का श्रोताओं पर गहरा प्रभाव पड़ा। पण्डितों को शास्त्रार्थ करने का साहस ही न हुआ। ऋषि के आगमन से पहले ही वे तो यह कहते थे कि बड़ा बुद्धिमान व विद्वान् है। उसका सामना कैसे हो?

कुछ सज्जनों ने इस विषय पर प्रश्नोत्तर किये। स्वामी जी ने कहा—"सीमित कर्म का फल असीम नहीं हो सकता। अपने सत्कर्मों का फल

(मुक्ति का सुख) भोगकर जीव लौटेगा ही।''

४ अप्रैल को आर्यसमाज स्थापित हो गया। पहले सात सभासद बने। बाबा ब्रह्मानन्द ने तब कहा—'केवल सात ही।'

तब ऋषि ने कहा—''पैग़म्बर मुहम्मद की तो केवल एक महिला ही सहायक थी और उनके मत ने बहुत उन्नति की। हमारे धर्म के तो सात सहयोगी हैं।''

श्री कृष्णनारायण ने पूछा—''आपके विचार में मैक्समूलर की संस्कृत-विद्या में कैसी योग्यता है?'' ऋषि ने कहा—''**मैक्समूलर वेदविद्या में बालक है।**''

लगभग एक मास लाहौर में कार्यरत रहकर १५ मई से २५ जुलाई तक अमृतसर में डेरा लगाया। डेरा सरदार भगवान सिंह के बाग में हुआ। व्याख्यान मलवई बुंगाह में होते रहे। सहस्रों लोग सुनने आया करते थे। यह बुंगाह अब नहीं है। यह स्वर्ण मन्दिर के ठीक सामने था। भारतीय जी के ग्रन्थ में इसे पहले 'मालवी बंगला' और अब 'मालवी बुंगेले' लिखा मिलता है। इस नगर में इन नामों वाला कोई स्थान न कभी था और न अभी है। मास्टर मुरलीधर आपको बाग से लेने व पहुँचाने आते-जाते थे। एक दिन आपने ऋषि से गुरुमन्त्र मांगा। ऋषि ने कहा—''सत्य को ग्रहण करना व असत्य का परित्याग करना ही हमारा गुरुमन्त्र है।''

गोरे पादरी बेरिंग ने १२ वर्ष पूर्व ईसाई बन चुके पादरी खड़कसिंह को ऋषि से शास्त्रार्थ करने के लिए बुलवाया। वह तो ऋषि के दर्शनमात्र करने से ऐसा प्रभावित हुआ कि वहाँ प्रश्नोत्तर कर रहे पण्डितों को ऋषि की ओर से उत्तर देने लगा। **पादरी बेरिंग को एक लेखक ने वेरिंग लिखा है।** यह कल्पना की उड़ान है। बटाला में इसी पादरी के नाम पर ईसाइयों का कॉलेज था जिसे इस सेवक ने बीसियों बार देखा था। पं० लेखराम जी ने इनका नाम बेरिंग एकदम ठीक लिखा है। इतिहास प्रदूषित करना पाप है। ऋषि की यात्रा का एक दूरगामी परिणाम यह निकला कि अब ब्राह्मण शूद्र कुल में जन्मे भाइयों, स्त्रियों, ईसाइयों व मुसलमानों के सामने वेदमन्त्र बोलने लग गये हैं। उज्जैन के सिंहस्थ (कुम्भ) मेले पर

गीता प्रेस के स्टालों पर हमने दिनरात गायत्री मन्त्र के कैसट बजते सुने। सड़क पर दिनरात लाखों, स्त्रियाँ व पुरुष आते जाते इन्हें सुनते थे। यह ऋषि दयानन्द के पुण्य प्रताप का ही फल है।

पंजाब में पहली अग्नि-परीक्षा

ऋषि की पंजाब यात्रा की एक विशेष उपलब्धि की ओर ध्यान नहीं दिया गया। अमृतसर के मिशन स्कूल के एक अध्यापक भाई ज्ञानसिंह दृढ़ आर्य बन गये। आप शुद्धि-आन्दोलन के एक आरम्भिक कर्णधार थे। आपके पुरुषार्थ से धर्मच्युत हो चुके सैंकड़ों हिन्दू सिख शुद्ध हुए। आपको ऋषि मिशन के लिए पंजाब में सर्वप्रथम अग्नि-परीक्षा देनी पड़ी। आपने हंसते-हंसते मिशन स्कूल की सर्विस को ऋषि ऋषि मिशन पर वार दिया। दबाव में नहीं आये। ऋषि के जीवनकाल में मुसलमान बन चुके एक सिख को सपरिवार शुद्ध कर दिखाया। कोई सिख ज्ञानी व सिख संस्था तब उसे बचा न सकी। पं० लेखराम जी आपकी लगन पर मुग्ध थे।

फिर गंगा-यमुना के मैदान में

पूर्व दिशा में रुड़की पहुँचे

ऋषि के पत्रों से पता चलता है कि आपके कार्यक्रम में कुछ अदल-बदल हो गया। आप जालन्धर में एक दिन रुककर तीन-चार दिन के लिए लुधियाना व अम्बाला रुककर २५ जुलाई को रुड़की पधारे। जून १८७८ को अमृतसर वाले लाला मुरलीधर जी रुड़की में इंजीनियरिंग कॉलेज में विद्या-प्राप्ति के लिए गये। पं० उमरावसिंह जी इसी कॉलेज में अध्यापक थे। आपने मुरलीधर जी से ऋषि की महानता उनके सिद्धान्तों तथा आर्य समाजों की स्थापना व प्रचार के विषय में बहुत कुछ सुना आपने रुड़की के कई सज्जनों के हस्ताक्षर करवाकर स्वामी जी को रुड़की पधारने की प्रार्थना की। ऋषि ने स्वीकृति दे दी। आप ५-६ सज्जनों सहित २५ जुलाई को रुड़की नगर आन पधारे।

पहले ही दिन जन-समूह के सामने एक विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान दिया। सुपठित, प्रोफ़ेसर आदि सुनने आये थे। सबने मन्त्रमुग्ध होकर महाराज को सुना। मुसलमानों ने भी व्याख्यान की प्रशंसा की। पुनर्जन्म पर एक व्याख्यान सुनकर सबने कहा आवागमन पर ऐसा व्याख्यान तो कभी सुना ही नहीं था।

रुड़की का एक मौलवी ईसाइयों व हिन्दुओं के विरुद्ध बाज़ारों में बोलता रहता था। मुसलमानों को भ्रमित किया गया कि स्वामी जी को मौलवी का उत्तर देने के लिए बुलवाया गया है। झगड़े की सम्भावना तो थी, परन्तु आर्यों के सुप्रबन्ध के कारण दंगा न हो सका। स्वामी जी ने कुरान के प्रामाणिक भाष्यों के प्रमाणों से इस्लाम पर भी अपने विचार रखे। बुद्धिमान मुसलमान भी सुनकर वाह! वाह!! करते थे।

एक मज़हबी सिख (दलित) सभा में बैठा था। उसे देखकर मुनीरख़ाँ पोस्टमैन ने उसे मनहूस नापाक (गन्दा अशुभ) कहकर फटकारा। ऋषि

ने अत्यन्त कोमल शब्दों में उस दलित को प्यार सत्कार देकर सभा में बैठने का अधिकार दिया। कहा, परमेश्वर की सृष्टि में सब मनुष्य समान हैं। तुम यहाँ नित्य आकर उपदेश श्रवण किया करो। मानवता के मान दयानन्द ने उस दिन रुड़की में क्रान्ति का शंखनाद कर दिया।

रुड़की में डार्विन के विकासवाद पर एक गम्भीर रोचक व विचारोत्तेजक भाषण देकर अंग्रेज़ी पठित लोगों के दिल जीत लिये।

मौलवी मुहम्मद क़ासिम से पत्रव्यवहार—शास्त्रार्थ के लिए पत्र-व्यवहार हुआ। मौलाना भीड़ में शास्त्रार्थ करना चाहते थे। चुने हुए लोगों में शान्त वातावरण में शास्त्रार्थ की शर्त उन्हें मान्य नहीं थी। मौलाना ने कप्तान स्टीवर्ट (W. Stewart) के लिखित पत्र को भी नहीं माना। इस कारण शास्त्रार्थ टल गया। कल्पित कहानियाँ गढ़ने वाले कुछ लोगों द्वारा आर्यसमाज में यह गप्प प्रचारित कर दी गई है कि ऋषि जी ने इन्हीं मौलाना को देवबन्द के मदरसा के लिए दान दिया। ऐसे भ्रमित लोगों ने मौलाना के पत्रव्यवहार में ऋषि के प्रति प्रयुक्त की गई कटु भाषा को पढ़ा व सुना ही नहीं।

२२ से २६ अगस्त तक ऋषि अलीगढ़ पधारे। व्याख्यान तो अधिक न हुए, परन्तु डेरे पर आने वालों को नित्यप्रति उपदेश देते रहे। मुम्बई से श्री श्यामजी कृष्णवर्मा, मूलजी ठाकुरसी तथा श्री हरिश्चन्द्र महाराज से यहाँ मिलने आये थे। सर सैयद का निमन्त्रण पाकर ये सब उन्हें मिलने गये।

यहाँ ठाकुर मुकन्दसिंह, डॉ० मुन्नासिंह व ठाकुर भोपालसिंह पहले से स्वागत-सत्कार के लिए छलेसर से आये हुए थे। यहाँ के राजपूतों ने अत्यन्त श्रद्धा भक्ति से स्वामी जी की सेवा की।

२६ अगस्त से ३ अक्तूबर तक महर्षि मेरठ में धर्म-प्रचार करते रहे। मुसलमानों ने भी शास्त्रार्थ की बात चलाई। धर्मसभा मेरठ ने कुछ प्रश्न भेजे। उनके शास्त्रोक्त उत्तर दे दिये गये। पं० श्रीगोपाल व पं० श्रीधर को आगे करके पौराणिक भी शास्त्रार्थ करने की डींग मारते रहे। शर्तें निश्चित न हो पाईं। उक्त दोनों पण्डित क्रोधी थे। ऋषि ने स्पष्ट कहा कि इनसे

शास्त्रार्थ नहीं होगा।

दिल्ली की दूसरी फेरी—मेरठ में आर्यसमाज की स्थापना हो गई। ऋषि अपने सिद्धान्तों व व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़कर ३ अक्तूबर से ६ नवम्बर १८७८ तक पुनः एक बार दिल्ली पधारे। इसी यात्रा में दिल्ली में भी आर्यसमाज स्थापित हो गया। यहीं पर ठाकुर रणजीतसिंह जी ने जयपुर आने का निमन्त्रण दिया। वह एक यज्ञ करवाना चाहते थे। ऋषि जी के जयपुर पहुँचने से पहले ही ठाकुर जी का निधन हो गया। स्टेशन पर जब यह सूचना मिली तो स्टेशन पर ठाकुर लक्ष्मणसिंह (उनके पुत्र) को सान्त्वना देकर कहा कि अब हम यहाँ नहीं रुकेंगे। वहीं से अजमेर को चल दिये। कहा, लौटती बार आप लोगों से मिलेंगे। साधु के लिए यही उचित लोकव्यवहार था।

अजमेर की एक ऐतिहासिक यात्रा

७ नवम्बर से १४ नवम्बर १८७८ तक

महर्षि दयानन्द अभी पंजाब में ही थे जब अजमेर निवासियों के मन में श्री महाराज जी को अजमेर आमन्त्रित करने की उत्कट इच्छा जागी। ऋषि जी पंजाब से मेरठ व दिल्ली पधारे तो अजमेर के सद्धर्म अभिलाषी जनों की ओर से श्रीमान समर्थदान जी ने अपने सब संगी साथियों की ओर से स्वामी जी को एक प्रेम भरा पत्र लिखकर अजमेर दर्शन देने की प्रार्थना की। ऋषिजी ने तत्काल उत्तर दिया कि आप ठहरने की समुचित व्यवस्था करके सूचना दें। हम दिल्ली के कार्य निपटाकर आएँगे।

यह पत्र पाकर भक्तजन गद्‌गद् हो गये। सारे नगर में स्वामी जी के शुभ आगमन का समाचार फैल गया। धन-संग्रह भी कर लिया गया। आर्य बन्धु महाराज जी के आने की तिथि की सूचना पाने को बहुत उतावले हो रहे थे कि इस बीच एक षड्यन्त्रकारी पोप ने एक चकित कर देने वाली लीला कर दी। ऋषि के आगमन के समाचार को सुनकर पाखण्डियों की नींद ही उड़ गई।

किसी धूर्त ने जुगल बिहारी छद्म नाम से ऋषि जी को निम्न पत्र लिख भेजा।

अजमेर

स्वामीजी महाराज! १७ अक्तूबर १८७८, बड़ा दुःख है कि हमने यहाँ आने का प्रस्ताव रखा था तथा समर्थदान जी ने अत्यन्त प्रयास किया, परन्तु लिखा तो गया, प्राप्ति की कोई आशा नहीं है सो फागुन ताईं अवश्य पक्का प्रबन्ध हो जाएगा। समर्थदान आपको यह सूचना नहीं देना चाहते थे, परन्तु प्रयत्न कर रहे हैं सो सब मनुष्य समर्थदान से अप्रसन्न हो गये हैं तथा भला-बुरा कहते हैं। अब समर्थदान पछताते हैं कि आपको पहले लिख दिया सो अब आप राह न देखें। फागुन में सब काम पक्का रखेंगे। तब आप अनुग्रह करके हमारी अभिलाषा को तृप्त करना। यहाँ आर्यसमाज जारी करने का विचार है।

आपका दास जुगलबिहारी शर्मा कालेज अजमेर

इस पत्र को पाकर ऋषि जी ने निम्न पत्र भेजा—

बाबू समर्थदान जी चारण आनन्दित रहो!

विदित होवे कि आज जुगलबिहारी शर्मा की एक चिट्ठी आई, जिससे जाना गया कि वहाँ चन्दे का कुछ प्रबन्ध नहीं हुआ है। सो तुम कुछ चिन्ता न करो। अब मिलना न हो तो फिर कभी मिलेंगे। और कुछ अफ़सोस मत समझो। हम तुम्हारे प्रेम को खूब जानते हैं और शोक की बात नहीं। यहाँ पर भी आनन्दपूर्वक व्याख्यान हो रहा है, और सब प्रकार से कुशल हैं। हम बहुत आनन्द में हैं।

२२ अक्तूबर सन् १९७८ **ह० दयानन्द सरस्वती**

ऋषि दयानन्द का उक्त पत्र पाकर अजमेर से उन्हें विस्तृत जानकारी दी गई के जुगलबिहारी नाम से आपको झूठा पत्र भेजा गया है। आप यहाँ पधारिये।

२८ अक्तूबर को स्वामी जी महाराज ने उत्तर देते हुए लिखा कि हम अवश्य आएँगे। यहाँ हमने समझ लिया कि जुगलबिहारी शर्मा के नाम से किसी ब्राह्मण ने पोपलीला की है, ऐसे धूर्त बहुत हैं।

आगे का घटनाक्रम देने से पहले हम जुगलबिहारी शर्मा की इस धोखाधड़ी पर तो इतना ही कहेंगे कि यह करतूत एक धूर्त की नहीं हो सकती। श्री समर्थदान जी आदि आर्यपुरुषों ने पत्र लिखने वाले की ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त कर ली, परन्तु उसके नाम का किसी ने उल्लेख नहीं किया।

उन्नीसवीं शताब्दी में राजा राममोहनराय से लेकर श्री स्वामी विवेकानन्द व स्वामी रामतीर्थ जी तक कई महापुरुष हुए, **परन्तु हिन्दू समाज ने जैसा कुटिल व क्रूर व्यवहार ऋषि से किया वैसा किसी और से नहीं किया।** ऋषि ने ओखी मठ व एकलिङ्ग की गद्दी के प्रलोभन ठुकराये। राजाओं धनवानों के धन को अनेक बार ठुकराया। श्री हजूरजी महाराज ने भी सम्पदा पर लात मारकर सत्य के लिए निडरतापूर्वक उनके संघर्ष की प्रशंसा की है। उन्हें विष दिया गया। ईंट, पत्थर मारे गये, टांग तोड़ी गई, कितने आक्रमण किये गये! कोलकाता की सभा में पूरे देश के मूर्त्तिपूजक ब्राह्मणों ने उनके विरुद्ध व्यवस्था दी।

खण्डन तो राजा राममोहनराय, केशवचन्द्र, स्वामी विवेकानन्द व रामतीर्थ भी करते रहे। **राजा राममोहनराय मूर्त्तिपूजा के विरोधी थे, परन्तु अपने पैतृक मन्दिर की आय के लिए अपनी माता पर अभियोग भी चलाया। उनके साथ तो ऐसा व्यवहार नहीं किया गया।**

पिलाया ज़हर का प्याला उन्हीं नादान लोगों ने,
कि वे जिनके लिए अमृत का प्याला ले के आये थे।

अजमेर आगमन—स्वामी जी महाराज को बग्घी पर बिठाकर उनके डेरे सेठ रामप्रसाद के उद्यान में ले जाया गया। यह समय पुष्कर के मेले का था। प्रचार का अच्छा अवसर जानकर महाराज वहाँ पहुँच गये। राव बहादुरसिंह जी ने सर्वप्रथम यहीं आपके दर्शन किये थे।

कालेज के विद्यार्थियों के कहने पर मन्त्रशक्ति दिखाने वाले साधुओं की पोल खोली तो वे भाग खड़े हुए। सैद्धान्तिक व्याख्यान भी होते रहे। प्रसिद्ध पादरी ग्रे से शास्त्रार्थ की चर्चा चली। ऋषि ने पादरी जी को ६४ प्रश्न लिखकर भेजे। शास्त्रार्थ को सुनने बहुत लोग आये। शास्त्रार्थ के

पश्चात् ऋषि जी कुछ दिन अजमेर ठहरे। उनके जाने के पश्चात् पादरी ग्रे बाज़ारों में भाषण देते फिरते थे। लोग पूछते थे कि स्वामी दयानन्द के सामने तो कुछ बोलने का आपको समय ही न मिला।

मुसलमान भी शास्त्रार्थ के लिए आगे नहीं आये। बातें तो बहुत बनाते रहे।

मसूदा, नसीराबाद व जयपुर होते हुए ऋषि जी रेवाड़ी पधारे। राव युधिष्ठिर सिंह ने रेवाड़ी आगमन पर आपका बहुत सेवा-सत्कार किया। रेलवे स्टेशन के मार्ग में छत्रियों पर स्वामी जी के व्याख्यान होते रहे। दूर-दूर से राव युधिष्ठिर सिंह ने अपने बन्धु-बान्धवों व धर्म-प्रेमियों को आमन्त्रित किया। ऋषि जी ने बल देकर सिद्ध किया कि गायत्री व वेदाधिकार सबको है। मूर्त्तिपूजा व मृतक श्राद्ध का खुलकर खण्डन किया। भरी सभा में गायत्री का निडरतपूर्वक सबको उपदेश दिया। ब्राह्मण रुष्ट अवश्य हुए। यह भी कहा कि सबके लिए एक ही गायत्री मन्त्र है। महर्षि की प्रेरणा से भारत की पहली गोशाला रावजी ने यहाँ स्थापित की। इससे भी प्रमाणित हो गया कि डॉ० जे० जार्डन्स जी का यह कथन भ्रामक है कि ऋषि ने हिन्दुओं की सहानुभूति बटोरने के लिए कलकत्ता की सभा के पश्चात् गोरक्षा का आन्दोलन छेड़ा।

दिल्ली, मेरठ, सहारनपुर, रुड़की, ज्वालापुर होते हुए श्री स्वामी जी महाराज २७ फ़रवरी सन् १८७९ से लेकर १४ अप्रैल तक कुम्भ मेला हरिद्वार पर अपनी सिंह गर्जना सुनाते रहे। कुम्भ मेले की अत्यावश्यक सामग्री आगे दी जायेगी।

वैदिक धर्म की दीक्षा

ऋषि ने १४ अप्रैल १८७९ को देहरादून निवासियों को दर्शन दिये। वेद ईश्वरीय ज्ञान है तथा ईश्वर की सत्ता, स्वरूप व उसकी उपासना आदि विषयों पर व्याख्यान दिये। ईसाई पादरी व मुसलमान भी मिलने आते रहे। धर्म चर्चा होती रही। मुसलमान भारी संख्या में उपद्रव करने के लिए डेरे पर आये। जन्म के एक मुसलमान मुहम्मद उमर को वैदिक धर्म की दीक्षा देकर उसे अलखधारी नाम दिया। यह किसी मुसलमान

की आधुनिक काल में पहली शुद्धि थी। आर्य जाति के इतिहास में यह एक नवीन क्रान्ति थी। ३० अप्रैल तक स्वामी जी यहाँ विराजे।

पहली मई को आप सहारनपुर पधारे। यहाँ कर्नल ऑल्काट व मैडम ब्लैवेट्स्की से आपकी भेंट हुई। कर्नल ने अपनी संस्था की कार्यवाही में एक झूठ गढ़कर जोड़ दिया कि ३० अप्रैल को सहारनपुर में उनकी कौंसिल की एक बैठक हुई। स्वामी दयानन्द भी कौंसलर के रूप में उसमें उपस्थित थे। गोरे कर्नल का यह काला झूठ पकड़ा गया। ऋषि तो ३० अप्रैल को देहरादून में थे। ऋषि के पत्रों व जीवनी लेखकों की साक्षी से इस झूठ का प्रतिवाद होता है। **ऋषि के निन्दक लाला जीयालाल जैनी ने भी सहारनपुर में पहली मई को ही ऋषि का आगमन लिखा है।**[१]

३ मई से २२ मई तक महाराज मेरठ पधारे। इस बार मौलवी मुहम्मद कासिम से शास्त्रार्थ की शर्तों का निर्णय न हो सका। मौलाना भाषण के लिए भी कोई समय सीमा नहीं मानते थे। **ऋषि बुद्धिमानों की सभा में शास्त्रार्थ करने के पक्ष में थे। मौलवी जी भीड़ एकत्र करना चाहते थे।** विचित्र बात तो यह रही कि यहाँ पं० चतुर्भुज ने हरिद्वार से आकर मौलवी मुहम्मद कासिम से मेल मिलाप करके स्वामी जी के विरुद्ध उनकी सहायता की।

मेरठ से चलकर २२ मई से ३ जुलाई तक आप अलीगढ़ में ठाकुर मुकन्दसिंह जी के यहाँ पधारे। प्रकृति ठीक नहीं थी। छलेसर में उपचार होता रहा। इस यात्रा का जीवनी लेखकों को पता ही न चला। ऋषि का एक पत्र इसका प्रबल प्रमाण है। भारत सुदशा प्रवर्त्तक से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। इस यात्रा में आप छलेसर आदि भी पधारे। **कोयल (अलीगढ़) में ऋषि ने अपना मुख़्तारनामा ठाकुर मुकन्दसिंह, ठाकुर भोपालसिंह व ठाकुर मुन्नासिंह के नाम रजिस्ट्री करवा दिया।** इससे इन तीनों भाइयों में ऋषि के विश्वास व स्नेह का पता चलता है। ऋषि जीवन विषयक यह हमारी नई खोज है।

---

१. द्रष्टव्य, 'दयानन्द छल कपट दर्पण', दूसरा संस्करण, पृष्ठ १०६।

३ जुलाई से ३१ जुलाई तक आपका डेरा मुरादाबाद में रहा। इस यात्रा में यहाँ आर्यसमाज की स्थापना कर दी गई। आपने यहाँ पर एक व्याख्यान में संगीत विद्या का आदि स्रोत सामवेद को सिद्ध करके दिखाया। स्वभाषा से प्रेम की भी अंग्रेज़ी पठित लोगों को प्रेरणा दी। कायमगंज के एक श्रद्धालु युवक रामलाल यदुवंशी को यज्ञोपवीत धारण करवाया। इस बार साहू श्यामसुन्दर के जीवन में परिवर्तन देखकर उसका भोजन स्वीकार किया।

बरेली की ऐतिहासिक यात्रा

महर्षि १४ अगस्त से ३ सितम्बर तक बरेली रहे। आपने अपने व्याख्यानों से अपनी निर्भयता, सत्यभाषण, देश प्रेम व अन्धविश्वासों के उन्मूलन का अच्छा परिचय दिया। आप की निर्भीक सत्यवाणी सुनकर गोरे अधिकारी तिलमिला उठे।

इसी यात्रा में आपकी भेंट नास्तिक युवक मुंशीराम से हो गई। उस युवक का जीवन परिवर्तन देश व समाज के लिए बड़ा शुभ सिद्ध हुआ। यह इस यात्रा की सबसे बड़ी उपलब्धि रही। यहीं मुंशीराम ने ऋषि की दिनचर्या देखी तो बड़ा प्रभावित हुआ।

यहाँ गोरे पादरी टी०जे०स्काट से महत्त्वपूर्ण विषयों पर ऋषि के शास्त्रार्थ हुए 'ईश्वर पापों को क्षमा करता है' इस विषय पर जो शास्त्रार्थ हुआ। वह धार्मिक जगत् के इतिहास में अभूतपूर्व था।

चार सितम्बर से १७ तक शाहजहाँपुर में सद्धर्म का प्रचार करके २५ सितम्बर से ८ अक्तूबर १८७९ तक फ़र्रुखाबाद में वैदिक धर्म का डंका बजाते रहे। भारी संख्या में श्रोता आपको सुनने आते थे। आर्यसमाज को सुदृढ़ करने के लिए अच्छा दान भी प्राप्त हुआ। वेदभाष्य के लिए भी आर्थिक सहयोग मिला। गो-पालन, रक्षा व उपयोगिता पर एक प्रभावशाली व्याख्यान दिया। वेश्यागमन तथा समलैङ्गिकता के दोषों पर हृदयस्पर्शी विचार दिये। धर्म सभा ने २५ प्रश्न भेजे। स्वामी जी ने उनके उत्तर बोल दिये। मैजिस्ट्रेट श्रीयुत डैनिस्टन तथा ज़िला मैजिस्ट्रेट श्री स्काट तथा पादरी

जी एक-दो बार पधारे। कार्यक्रम की समाप्ति तक विराजमान रहते थे।[१]

प्रयाग-मिर्ज़ापुर से दानापुर की यात्रा

१७ अक्तूबर को प्रयाग पधारे। २३ से ३० मिर्ज़ापुर में डेरा किया। आगे चलकर ३० अक्तूबर से १९ नवम्बर तक दानापुर निवासियों की विनती पर वहाँ अमृतवर्षा करते रहे। दानापुर में सत्यार्थप्रकाश के कुछ पृष्ठों से वैदिक धर्म की किरणों के दर्शन हुए। वहाँ का एक व्यक्ति छेदीलाल काशी में मुंशी हरबंसलाल के मुद्रणालय में प्रूफ़ रीडर था। श्री जनकधारी लाल को उसी ने यह बताया था कि सत्यभाषण करने पर चाहे कितना विरोध व अप्रतिष्ठा क्यों न हो, स्वामी दयानन्द न दबते हैं, न डरते हैं और न सत्य कहने से टलते हैं। यह प्रत्येक व्यक्ति के बस की बात नहीं है। फिर इसी छेदीलाल को लिखकर ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की तीन प्रतियाँ मंगवाई गईं।

दानापुर वालों ने दिल्ली में ऋषि को दानापुर आने का निमन्त्रण दिया। जब पधारे तो विघ्न डालने वाले प्रचार में विघ्न डालने से नहीं चूके, परन्तु ऋषि निर्भय होकर प्रचार करते रहे। **यहाँ भी श्री महाराज ने पुष्प तोड़ने को पाप कर्म बताया।** ईश्वर और उसके ध्यान पर एक मार्मिक व्याख्यान दिया। कहा, मूर्तिपूजा हिन्दुओं का धर्म नहीं है। गोरक्षा पर यहाँ भी अपना सन्देश दिया। पं० चतुर्भुज अलीगढ़ वाले ने यहाँ पहुँचकर मुसलमानों से सांठगाठ करके वातावरण बिगाड़ना चाहा। आर्यसमाज यहाँ स्थापित हो चुका था। विरोधियों ने 'इण्डियन मिरर' पत्र में यह झूठा समाचार छपवा दिया कि स्वामी जी ने पाषाण मूर्त्ति को लात मार दी। इस मिथ्या समाचार की शीघ्र पोल खुल गई। कई घोर प्रतिमा पूजकों ने मूर्त्तिपूजा का परित्याग कर दिया।

---

१. हमने ये दोनों नाम ठीक-ठीक दिये हैं। पं० लेखराम जी के मूल ग्रन्थ में भी यही नाम दिये हैं। पं० लेखराम जी के ग्रन्थ के २००७ के संस्करण में 'पादरी स्काट' का नाम घुसेड़ दिया गया है। यह ठीक नहीं।

जब दर्द से ऋषिवर तड़प उठे

दानापुर में खाट पर लेटे-लेटे महराज दर्द से व्याकुल होकर तड़प उठे। चारपाई छोड़कर इधर-उधर चलने लगे। सेवक जाग गया। उसने पूछा क्या इस समय किसी वैद्य डाक्टर को बुलाया जाए? महाराज ने एक लम्बी ठण्डी साँस लेकर कहा कि इस दर्द की औषधि किसी वैद्य डाक्टर के पास नहीं। देश की दुर्दशा देखकर, पतन देखकर, दीनता, दरिद्रता को देखकर, दलित-विधवाओं की आहें सुन-सुन कर, जाति के दीनों-अनाथों का रुदन सुनकर मेरा हृदय रक्तरोदन करता है। देश का दुखड़ा मुझे चैन नहीं लेने देता।

जो तड़प उठे जन-पीड़ा से वह सच्चा मुनि मनस्वी है।
जो राख रमाकर आग तपे वह भी क्या ख़ाक तपस्वी है॥

काशी पर अन्तिम चढ़ाई

स्वामी दयानन्द जी महाराज के जीवन में काशी नगरी का एक विशेष महत्त्व है। वैदिक-धर्म ध्वजा फहराने और अन्धविश्वास तथा कुरीतियों के उन्मूलन के लिए ऋषि ने बार-बार काशी पर चढ़ाई की। काशी के पण्डितों ने अपने सर्वसामर्थ्य से उनका विरोध किया। जितना अधिक उनका विरोध किया गया उससे कहीं अधिक उत्साह तथा जोश से ऋषि हर बार काशी पर चढ़ाई करके यहाँ के निष्क्रिय पण्डितों को उनके घर में आकर चुनौती दी। २० नवम्बर सन् १८७९ से लेकर ५ मई सन् १८८० तक ऋषिवर काशी में डेरा डालकर अपने उद्देश्य की पूर्ति में दिन-रात व्यस्त रहे।

आते ही एक विज्ञापन द्वारा काशी के पण्डितों को सार्वजनिक रूप से मूर्त्तिपूजा विषय पर शास्त्रार्थ की चुनौती दे डाली। काशी नरेश अब तो बदल चुका था। १८६९ के शास्त्रार्थ में उसने ताली बजाकर काशी के गुण्डों को हुल्लड़ के लिए उकसाया था अब उसने भी अपने पण्डितों को शास्त्रार्थ की चुनौती स्वीकार करके आगे आने को नहीं कहा। जब जागे तभी सवेरा। पण्डित अब भी डींगे तो बहुत मारते रहे, परन्तु प्रतिमा

पूजन की पुष्टि में श्रुति का कोई प्रमाण न मिलने से दम साधे मौन बैठे रहे। **इनके लिखने की शैली से यही सिद्ध होता था कि परस्पर विरोधी सब मतवादी पुरानी, किरानी व कुरानी सत्य हैं। केवल वेद-वेदाङ्ग के मानने वाले दयानन्द का धर्म ही असत्य है।** काशी के कण्ठी तिलकधारी, जन्माभिमानी ब्राह्मण आज पर्यन्त ऋषि की विचारधारा के खण्डन में पोथे पोथियाँ लिखते छपवाते चले आ रहे हैं, परन्तु प्रयाग से छपने वाले ईसाई साहित्य तथा रामनगर से हिन्दुओं के खण्डन में छपने वाले इस्लामी साहित्य का उत्तर, प्रत्युत्तर देने की इनमें न योग्यता है और न साहस। कर्नल ऑल्काट तथा मैडम ब्लैवट्सकी मुम्बई से चलकर ऋषि जी के दर्शनार्थ आये। यहाँ विद्वानों की उपस्थिति में जनसभाओं में वेदशास्त्रों का गुणगान करते रहे। धरती तल पर सर्वत्र वेदों से ही ज्ञान का प्रसार हुआ है। भारत का बहुत यशोगान किया। यह भी कहा कि हमारी सभा में सब धर्म वाले सम्मिलित हो सकते हैं, परन्तु वे नहीं जो ईश्वर अथवा परलोक को नहीं मानते।

इन लोगों के बारे यहाँ अधिक नहीं लिखा जा सकता। न जाने ये लोग किस प्रयोजन से ऋषि जी के निकट आये। इनको किसने महर्षि दयानन्द के साथ जुड़ने को कहा। ऋषि के व्यक्तित्व व कीर्ति का लाभ उठाना तो एक उद्देश्य था ही। आश्चर्य होता है कि जो शिष्य बनने आये थे, ईश्वर व परलोक की दुहाई देने वाले ये लोग विशुद्ध नास्तिक व वेद-निन्दक निकले।

व्याख्यानों पर प्रतिबन्ध

२० दिसम्बर को स्वामी जी महाराज का बंगाली टोले के स्कूल में व्याख्यान होना था, परन्तु वहाँ जाने पर पता चला कि मिस्टर वाल (Wal) कलैक्टर काशी ने एक लिखित आदेश देकर उनके व्याख्यान पर प्रतिबन्ध लगा दिया। **यह काशी के पण्डितों की ही कृपा का प्रसाद था जिन्होंने मिस्टर वाल को विनती करके ऐसा करवाया।**

काशी के 'स्टार' पत्र ने अपने २७ दिसम्बर १८७९ के अंक में इसको अनुचित बताते हुए यह भी लिखा कि ऋषि जी को तो अपने ही देश में

बोलने न दिया गया, परन्तु कर्नल ऑल्काट ने वहीं अंग्रेज़ी में भाषण दिया। गोरे विदेशी को तो बोलने की छूट दी। **ऋषिवर के प्रचार पर प्रतिबन्ध की यह इकलौती घटना है।**

'पायोनीर' पत्र ने भी इस आदेश की निन्दा की।[१] पत्रों में इस आदेश की निन्दा होने से कलैक्टर ने स्वयं इंस्पैक्टर पुलिस को भेजकर स्वामी जी को सूचित किया कि धार्मिक सिद्धान्तों के उपदेश देने की अनुमति है।

'रोक न कोई सका अरमान के तूफ़ान को'

इसी यात्रा में समर्थदान व मुरारीलाल (बख़्तावरसिंह का अनुज) को ऋषि ने यज्ञोपवीत दिया। इसी यात्रा में व्याख्यान माला के अन्तिम दिन १५ अप्रैल १८८० को स्वामी जी ने आर्यसमाज की स्थापना कर दी।

स्वामी जी ने साधु जवाहरदास व पं० मोतीराम जी के प्रश्न के उत्तर में समाधान करते हुए बताया कि षड्दर्शनों में परस्पर विरोध नहीं मतैक्य है।

स्वामी विशुद्धानन्द जी ने कहा—"स्वामी विशुद्धानन्द ने पं० **मोतीराम से कहा—यही तो कमी है कि काशी में, इतने विद्वान् हैं दयानन्द को वेदार्थ लगाना आता है, परन्तु काशी के विद्वानों में से किसी से नहीं लगता।"**

स्वामी विशुद्धानन्द जी का बाबू पृथिवी सिंह जी से मिलन हुआ तो वार्त्तालाप में प्रसंगवश कहा—"**स्वामी दयानन्द का वेदभाष्य सचमुच ही अपनी अत्यन्त विद्वत्ता तथा शुद्धता की दृष्टि से विश्वसनीय है, परन्तु भाई जनसाधारण के सामने मैं इस बात को क्योंकर कह सकता हूँ। यदि तनिक कह दूँ तो अपनी सारी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जाए।**"[१]

---

१. पायोनीर का यह लम्बा लेख पं० लेखराम जी की ग्रन्थमाला 'कुल्यिाते आर्य मुसाफ़िर' से लेकर हमने 'सम्पूर्ण जीवन चरित्र' में दिया है।

२. आर्य दर्पण, काशी के फ़रवरी सन् १८८० की सम्पादकीय टिप्पणी में पृष्ठ ४७ पर विशुद्धानन्द जी के जीवनकाल में यह बात छपी मिलती है।

वह हिन्दू का बीज नहीं

ऋषि द्वेषी पं० चतुर्भुज की प्रेरणा से पं० युगलकिशोर ने काशी में एक विज्ञापन छपवाकर चार व्यक्तियों के प्रायश्चित्त करवाने की सूचना प्रचारित की। ये चार व्यक्ति दयानन्द सरस्वती के पास वेदार्थ जानने की इच्छा से चले गये। इन चारों का नाम झूठमूठ छापा गया। वे तो कभी स्वामी जी के पास गये ही नहीं थे। इस झूठे की पोल खुलने पर पण्डित जी क्रोधित होकर बोले—**"जिसने दयानन्द का मुँह तक देखा हो वह हिन्दू का बीज नहीं।"**

इस पर बाबू नारायणसिंह ने पं० युगलकिशोर से कहा कि काशी शास्त्रार्थ के समय संवत् १९२६ में काशी नरेश, पं० बालशास्त्री तथा स्वामी विशुद्धानन्द आदि सहस्रों हिन्दुओं ने स्वामी दयानन्द का मुख देखा था। आप इन सबको गालियाँ देते हैं। इस पर सभा में विचार करके युगलकिशोर को सभा से निष्कासित कर दिया गया।[१]

स्वातन्त्र्य वीर सावरकर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि वायसराय लार्ड रिपन के सेवानिवृत्त होने पर काशी के ब्राह्मणों ने बैलगाड़ी में उसकी शोभा यात्रा निकाली। चलते-चलते राजभक्ति ने जोश मारा तो बैलों का जूआ खोल दिया गया। काशी के ब्राह्मणों ने अपनी गर्दन पर जूआ रखकर रिपन की गाड़ी को खींचा। **तब काशी के पण्डितों को रिपन का दर्शन करके तथा बैलगाड़ी के खींचने पर न तो लज्जा आई और न ही कोई पाप लगा।**

दयावान् अखण्ड ब्रह्मचारी

इसी काशी-यात्रा के समय की एक घटना है। स्वामी जी महाराज दाऊदनगर की सड़क पर जा रहे थे। सड़क पर दलदल थी। एक गाड़ीवान की बैलगाड़ी कीचड़ में फंस धंस गई। गाड़ीवान कृषक बैलों पर कोड़े वर्षाता जा रहा था, परन्तु वह फिर भी आगे नहीं सरक रही थी उलटा कीचड़ में और धंसती जा रही थी। स्वामी जी ने यह दृश्य देखा तो आगे

१. द्रष्टव्य, 'भारत मित्र' कलकत्ता १९ अगस्त सन् १८८०।

बढ़कर बैलों को खोलकर बैलों के जूये को अपने सबल कन्धों पर रखकर गाड़ी को कीचड़ से बाहर खींच लाये। बाबू अमृतलाल आदि जो काशी को जा रहे थे, यह दृश्य देखकर दंग रह गये। ये महात्मा कितने महाबली व दयालु हैं।

प्रश्न है कि ऋषि को दया किस पर आई? मूक बैलों का हृदय पुकार-पुकार कर कहता था कि दयावान दयानन्द को हम पर दया आई। थका टूटा किसान घर जाने का उतावला था। उसके धड़कते दिल से कोई पूछता तो वह यही कहता तपस्वी दयानन्द को मुझ पर दया आई। अन्धेरा हो रहा था उसे घर जाने में और विलम्ब हो रहा था। पं० चमूपति ने बैलों की वाणी बनकर कभी लिखा था—

सिसकतों को दलदल से जिसने निकाला।
दयानन्द स्वामी! तिरा बोल बाला॥

वैदिक यन्त्रालय का ऋण लौटाते समय कहा

१२ फ़रवरी १८८० को लक्ष्मीकुण्ड काशी में वैदिक साहित्य प्रकाशन के लिए ऋषि ने वैदिक यन्त्रालय की स्थापना की। सुधारकों विचारकों में ऋषि दयानन्द ने ही सर्वप्रथम प्रेस लगाया। इसके लिए भक्तों व समाजों से ऋण भी लिया गया। आगे चलकर सबका ऋण चुका दिया गया। लाहौर के लाला साईंदास जी ने भी २५० रुपये ऋण रूप में दिये थे। जब यह राशि लौटाई गई तो आपने लेने से इन्कार कर दिया। तब ऋषि ने **अप्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा कि जब प्रेस के लिए ऋण लिया गया तो फिर इसे लौटाया क्यों न जावे? हमसे यह राशि लेकर जिस परोपकार के कार्य के लिए आप चाहो यह राशि व्यय कर दो।** इसे कहते हैं अर्थ शुचिता।[१]

कानपुर फ़र्रुख़ाबाद में एक मास ग्यारह दिन तक प्रचार करके स्वामी जी महाराज पहली जुलाई को मैनपुरी पधारे। एक सप्ताह तक आपके

१. द्रष्टव्य 'स्वामी दयानन्द और उसकी तालीम' लेखक मेहता राधाकिशन, पृष्ठ ३२९-३३०।

सारगर्भित प्रभावशाली व्याख्यान होते रहे। फ़र्रुख़ाबाद में सेठ जगन्नाथ को लक्ष्य करके जीवन सुधार के लिए कड़ा उपदेश दिया। ईश्वर की कृपा से उसने सदाचारपूर्वक जीवन अपनाने का निश्चय करके अपने गृहस्थ को स्वर्ग बना लिया। **उन्नीसवीं शताब्दी में महर्षि दयानन्द ही एकमेव ऐसे सुधारक, विचारक व महात्मा हुए हैं जिन्होंने राजाओं, श्रीमन्तों व सेठों को वेश्यागमन का परित्याग करने के लिए उपदेश भी दिये व फटकार भी लगाई और सुधार उपकार का यही कार्य उनके बलिदान का मुख्य कारण बना।**

जब फ़र्रुख़ाबाद से चलने का समय आया तो भक्तों ने बहुत श्रद्धा व भावुकतावश कुछ और रुकने का अनुरोध किया, परन्तु वीतराग संन्यासी ने कहा—"नहीं हम आज ही निकलेंगे। गाड़ी का पता किया गया। प्रबन्ध न हो सका तो महाराज ने कहा—हम पैदल ही चले जाएँगे। सवेरा मैनपुरी में करेंगे। रहेंगे नहीं।" बाबू दुर्गाप्रसाद जी ने नगर कोतवाल से कहकर आग्रहपूर्वक गाड़ी जुतवाई। अपना जमादार सालिक मुहम्मद ख़ाँ साथ कर दिया। तोताराम चौबे भी मैनपुरी तक साथ गया।

मिर्ज़ा आबिद बेग[१] ने कहा

मैनपुरी में रिकटगंज धर्मशाला के अन्दर आपके व्याख्यान होते रहे। वेदोत्पत्ति तथा धर्मोपदेश, परमात्मा की सत्ता की सिद्धि तथा मतपन्थों की समीक्षा आदि विषयों पर आपने बहुत प्रेरणाप्रद ज्ञानवर्धक व्याख्यान दिये। पठित, अपठित, राज्याधिकारी आदि सब लोग सुनने आते रहे। व्याख्यानों की समाप्ति पर मिर्ज़ा आबिद बेग ने बहुत सुन्दर शब्दों में धन्यवाद देते हुए कहा—**"ये जो कहते हैं कि दूरदेश के निवासी यथा चीन, इत्यादि से यहाँ विद्या-प्राप्ति के लिए आया करते थे, निस्सन्देह जब महात्मा जी सदृश विद्वान् यहाँ होंगे तब विदेशों से लोग यहाँ आते होंगे।"**

---

१. इनका नाम तत्कालीन पत्रों में हमने यही पढ़ा है। भारतीय जी ने पुरोधा ग्रन्थ में न जाने कैसे अहमद अली बेग बना दिया है। 'प्रकाश' के सन् १९१३ के दीपमाला अंक पृष्ठ आठ पर भी यही नाम छपा मिलता है।

पाँच जुलाई को शंका-समाधान करते हुए सबको आनन्दित किया। तोताराम जी पीछे रुके। आपने ११ जुलाई १८८० को आर्यसमाज की स्थापना कर दी।

मैनपुरी से मेरठ के लिए ६ जुलाई को विदाई लेकर घोड़ागाड़ी से भारोल पहुँचे। एक दिन यहाँ पर निवास किया आठ जुलाई को मेरठ पधारे।

वीतराग मुस्कराते ही रहे

मेरठ में आर्यसमाज स्थापना के पश्चात् पाँचवीं बार ऋषि मेरठ पधारे। भारोल से ७ जुलाई को मेरठ के लिए प्रस्थान किया। शिकोहाबाद से रेल पर सवार हुए। अगला स्टेशन फ़ीरोज़ाबाद का था। यहाँ के बंगाली स्टेशन मास्टर ने स्वामीजी को द्वितीय श्रेणी के डिब्बा में बैठे देखकर सोचा कि यह साधु भूल से इस डिब्बा में बैठ गया है। देश के स्वतन्त्र होने तक भी द्वितीय श्रेणी से नीचे एक इंटर क्लास और तृतीय श्रेणी के डिब्बे होते थे। स्टेशन मास्टर ने सोचा महात्मा टुण्डला स्टेशन पर पकड़ा जाएगा तो फ़ौजदारी सपुर्द होगा अत: स्टेशन के एक अन्य बंगाली कर्मचारी को कहा कि इसे इस डिब्बा से निकाल दो।

स्वामी जी उसकी बात सुनकर मुस्करा दिये। इस पर स्टेशन मास्टर क्रोधित होकर बोला—"हंसता क्यों है ? गाड़ी से नीचे उतर जा।" यह कहा और आगे को चल दिया। थोड़ी दूर जाने पर किसी ने स्टेशन मास्टर से कहा—"इस गाड़ी से एक बहुत बड़े महात्मा पण्डित जाते हैं।" उसने पूछा—"कहाँ हैं ?" जब स्वामी जी की ओर संकेत किया तो स्टेशन मास्टर स्वामी जी के पास आकर क्षमा माँगने लगा। महर्षि ने कहा—"तुमने हमसे कुछ नहीं कहा। हम ऐसी बातों से रुष्ट नहीं होते।"[१]

---

१. यह घटना किसी जीवनी लेखक ने नहीं दी। केवल पूज्य लक्ष्मणजी ने ही लिखी है। इसका मूलस्रोत हमने खोज निकाला है। यह 'प्रकाश' उर्दू साप्ताहिक के १९१२ के दीपमाला अंक में छपी मिलती है। तब वह बंगाली स्टेशन मास्टर आगरा में था। उसने स्वयं आर्यों को यह प्रसंग सुनाया। तब श्रीराम जी मन्त्री आर्यसमाज ने इसे 'प्रकाश' में प्रकाशित करवा दिया।

ऋषि जी ने आठ जुलाई से १३ सितम्बर तक मेरठ नगर में आसन जमाया। इस यात्रा के समय पंडिता रमाबाई महाराज के दर्शनार्थ यहाँ आई। उसके यहाँ चार व्यायख्यान भी करवाये गये। वह बहुत पण्डिता तो थी। ऋषि चाहते थे कि वह आजीवन ब्रह्मचारिणी रहकर स्त्री जाति का उद्धार करे, परन्तु "It is a too thorny path for an ordinary travellor." अर्थात् एक साधारण पथिक के लिए यह एक बहुत कण्टीला मार्ग है। सो ऋषि जो चाहते थे वह हो न सका।

मेरठ की इसी यात्रा के समय कर्नल व मैडम भी मेरठ आये। इस यात्रा के समय पं० पालीराम व बाबू छेदीलाल (जिनकी कोठी में मैडम को रखा गया) आदि को पता लग गया कि ये लोग नास्तिक हैं। इनको वेद से, आर्यधर्म से कुछ भी लेना-देना नहीं है। ऋषि भी सतर्क हो गये। वास्तविकता यही है कि ये लोग ऋषि की लोकप्रियता व प्रभाव का लाभ उठाकर भारत में अपना उल्लू सीधा करना चाहते थे। यह सूली व साम्राज्य (Cross Imperialism) की किसी चाल से भारत में आकर ऋषि को चिपके थे। इस पर आगे संक्षेप से अपना निष्कर्ष देंगे। पश्चिम में भी दोनों की पृष्ठभूमि कुछ अच्छी नहीं रही थी। पोल खुलते देर नहीं लगी।

१६ सितम्बर से २ अक्तूबर १८८० तक ऋषिवर मुज़फ़्फ़रनगर में शंका-समाधान, उपदेश व्याख्यान देते हुए व धर्म-चर्चा करते हुए बहुत व्यस्त रहे। विरोध करने वालों ने अच्छा विरोध किया। मृतक श्राद्ध पर सबके प्रश्नों के उत्तर दिये। ढेले, पत्थर भी फैंके गये। एक प्रश्न के उत्तर में कहा कि शिक्षा से न तो कुकर्म करना बढ़ सकता है और न घट सकता है। यह तो अधिकतर संगति, संस्कार व स्वभाव पर निर्भर करता है।

अन्धविश्वास पर एक महत्त्वपूर्ण टिप्पणी

यहाँ बातचीत करते हुए ऋषि ने कहा—इन पोप जी की लीला देखिये। पार्वती ने अपने शरीर की मैल उतारकर एक बालक बना दिया। उसे द्वार पर बिठा दिया। द्वार पर युद्ध हुआ। पार्वती को पता ही न चला। बालक के ऊपर हाथी का सिर लगा दिया और चूहे पर उसकी सवारी करवा दी।

मेरठ आर्यसमाज के उत्सव पर—आर्यसमाज मेरठ के उत्सव में भाग लेने के लिए २ अक्तूबर को पुनः एक बार पधारे। विरोधियों के जानबूझ कर किये गये तीखे प्रश्नों के युक्तियुक्त उत्तर दिये। बहुत दूर-दूर के समाजों के प्रतिनिधि उत्सव में सम्मिलित हुए। पं० घासीराम जी ने मेरठ में दस व्याख्यान होना लिखा है।

६ अक्तूबर को देहरादून जाते हुए सहारनपुर स्टेशन पर कई सज्जनों से वार्त्तालाप शंका-समाधान किया। सहारनपुर में जैनियों ने ऋषि को बन्दी बनाये जाने के लिए विज्ञापन दिये हैं। यह सुनकर आपने कहा—"स्वर्ण को जितनी आंच दी जायेगी वह उतना ही कुन्दन बनेगा।"

देहरादून में पौराणिक, ईसाई व मुसलमान शास्त्रार्थ की चर्चा तो करते रहे। सामने आकर कोई टिका ही नहीं।

अलीगढ़ होकर ऋषि आगरा पधारे। यहाँ प्रचार की धूम मच गई। चर्च के बिशप से अच्छा वार्त्तालाप हुआ। बिशप ने पूछा—"आप कभी पर्वत पर आते हैं अथवा नहीं? यदि कभी आवें तो मैं बहुत कुछ जानना चाहता हूँ।" महाराज ने कहा—"**विश्राम के लिए तो नहीं आता, हाँ धार्मिक कार्य के लिए आ सकता हूँ।**"

पं० कालिदास ने कहा मुझमें इतनी योग्यता व सामर्थ्य नहीं

आगरा के सेंट जान कॉलेज के संस्कृत के प्राध्यापक पं० कालिदास कुछ समय गुरु विरजानन्द जी के शिष्य रहे थे। तब ऋषिवर भी दण्डी गुरुजी के पास अध्ययन कर रहे थे। आगरा के पण्डितों ने उन्हें स्वामी जी महाराज से शास्त्रार्थ करने के लिए दबाव डाला। प्रो० कालिदास ने आगरा के पण्डितों से कहा—"**मुझमें इतनी योग्यता व सामर्थ्य नहीं कि मैं स्वामी दयानन्द से शास्त्रार्थ करूँ। यह उन्हीं दिनों गुरु विरजानन्द जी से ऐसे-ऐसे प्रश्न किया करते थे कि गुरुजी तत्क्षण इनका उत्तर न दे सकते थे। वे कहा करते थे कि इनका उत्तर कल दूँगा।**"

पं० कालिदास जी महर्षि दयानन्द जी के अथाह शास्त्र ज्ञान तथा वैदूष्य से सुपरिचित थे ही।

आर्य सन्मार्ग संदर्शिनी सभा कलकत्ता

संसार में प्रत्येक युग में प्रत्येक देश में सुधारकों का उनके देश में विरोध होता आया है, परन्तु २२ जनवरी सन् १८८१ में कलकत्ता विश्वविद्यालय के सीनेट हाल में ऋषि दयानन्द की विचारधारा के विरुद्ध इस देश के प्रत्येक भाग के पण्डितों ने व्यवस्था देने के लिए एक विशाल सभा की। **ये पण्डित आये नहीं लाये गये।** मथुरा के सेठ नारायणदास ने इसके लिए धन फूँका। पण्डितों को दक्षिणा दी गई। जिनके विरुद्ध व्यवस्था दी गई उन ऋषि दयानन्द जी को बुलाया ही नहीं गया। किसी ने उनका पक्ष सुना ही नहीं। जब १८६९ में काशी में उनका सामना वहाँ के पण्डित नहीं कर सके तो यह जमघट भी जानता था कि इस आदित्य ब्रह्मचारी के सामने कोई भी टिक नहीं सकता। ऋषि ने इस व्यवस्था को कोई महत्त्व ही नहीं दिया। ऋषि से पूछकर वहाँ उठाये गये प्रश्नों का एक उर्दू पुस्तक में उत्तर दे दिया गया। बस! दयानन्द अकम्प अपना सिंहनाद करते रहे। **प्रतिमा-पूजन का प्रश्न आया तो वहाँ भी पण्डित लोग श्रुति का एक भी प्रमाण मूर्तिपूजा के पक्ष में न दे सके।** बस यही मृतक-श्राद्ध व वैदिक शब्दों के यौगिक अर्थों व बहुदेवतावाद पर पण्डितों की व्यवस्था का प्रभाव जानिये। ५० वर्ष पश्चात् उसी हाल में महर्षि के शिष्य पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय का उनके ग्रन्थ आस्तिकवाद के लिए अभिनन्दन किया गया। इसमें सन् १८८१ की पोंगापन्थियों की व्यवस्था में दिये गये सब विचारों का प्रतिवाद ही तो है। **यह एक प्रकार से महर्षि दयानन्द की दिग्विजय का स्वर्ण जयन्ती महोत्सव था।**

—०—

पं० भानुदत्त की खरी-खरी

कलकत्ता की उक्त सभा पर पं० श्रद्धाराम के सहयोगी पं० भानुदत्त जी की विचारणीय पठनीय प्रतिक्रिया थी—"हा नारायण! यह क्या हो

रहा है ? एक पुरुष है और १०० ओर से उसे घसीटता है (घसीटा जाता है) ।.........तो फिर बिना तर्क और वादियों के ग्रन्थ देखे घर में ही फ़ैसला कर लेना किसी प्रकार से योग्य नहीं प्रतीत होता, और न तो इससे वादियों के मत का खण्डन और साधारण समाज की सन्तुष्टि ही हो सकती है। सब यही कहेंगे कि सब कोई अपने-अपने घर में अपनी स्त्री का नाम 'महारानी' रख सकते हैं।......................... ऐसी सभा के वादियों को इस बात के कहने का स्थान मिलता है कि सरस्वती जी (स्वामी दयानन्द) के सम्मुख होकर शास्त्रार्थ कोई नहीं करता, अपने-अपने घरों में जो चाहे ध्रुपद गाते हैं।''[१]

१. द्रष्टव्य, 'भारतमित्र' कलकत्ता का १० फ़रवरी १८८२ का अंक

राजस्थान की यात्रा

ऋषिवर १० मार्च सन् १८८१ को आगरा से रेल द्वारा भरतपुर पधारे। स्टेशन के समीप एक उद्यान में डेरा लगाया। १९ मार्च तक यहाँ अपने लेखन कार्यों में व्यस्त रहे। भारत सुदशा प्रवर्त्तक से पता चलता है कि यहाँ कोई सभा तो नहीं हुई। दर्शनार्थ आने वालों को उपदेश देते रहे।

२० मार्च को जयपुर आना हुआ। यहँ भी एक उद्यान में आसन लगाया। शंका-समाधान तथा धर्म-चर्चा होती रहती थी। ऋषि ने समय-समय पर यहाँ दर्शन देकर वैदिक धर्म का बीज बोया। परिणाम स्वरूप वैदिक धर्म सभा के नाम से संगठन की स्थापना की गई फिर इसी का नाम आर्यसमाज रखा गया।

स्वामीजी महाराज कई बार अजमेर पधारे। प्रत्येक फेरी का कुछ अपना ही महत्त्व रहा है, परन्तु पाँच मई से २२ जून १८८१ की यह यात्रा निश्चय ही ऐतिहासिक सिद्ध हुई। धर्म-प्रेमी रात्रि ग्यारह बजे आने वाले गाड़ी से पहले ही स्टेशन पर स्वागत के लिए पहुँच गये। सेठ फ़तहमल के उद्यान वाली कोठी में आपको ठहराया गया। १६ मई रात्रि रेल द्वारा पेशावर से पं० लेखराम आपके दर्शनार्थ अजमेर पहुँच गये। रात स्टेशन के निकट ही एक धर्मशाला में ठहरे। प्रातः १७ मई को श्री महाराज के प्रथम व अन्तिम बार दर्शन करके शंका-समाधान किया। **ऋषि के दर्शन क्या किये बस ऋषि के मिशन के लिए समर्पित हो गये।** इस यात्रा को इस घटना ने ऐतिहासिक बना दिया। इसी उद्यान में आपकी व्याख्यानमाला की व्यवस्था की गई। उत्तम व्यवस्था का श्रेय पं० भागराम जी जज अजमेर को जाता है।

शास्त्रार्थ का सबको खुला निमन्त्रण था, परन्तु नियमानुसार शास्त्रार्थ करने से सब घबराते कतराते थे। सुखदेवप्रसाद नाम का एक युवक श्रीमहाराज के व्याख्यान सुनकर ईसाई होते-होते बच गया। इस यात्रा का

सैंकड़ों व्यक्तियों ने लाभ उठाया।

राव बहादुरसिंह जी मसूदा वालों को दिये गये वचन के अनुसार आप २३ जून से १८ अगस्त तक मसूदा पधारे। नगर के बाहर रामबाग की बारह दरी में डेरा किया। यहाँ जैन साधु सिद्धकरण से प्रभावशाली शास्त्रार्थ हुआ। **लाला जीयालाल जैनी के अनुसार श्री सिद्धकरण की कोई विशेष योग्यता ही नहीं थी।** कई जैनों ने ऋषि से यज्ञोपवीत धारण किया। सुधार व प्रचार की दृष्टि से यात्रा बड़ी सफल रही। इसी यात्रा में ब्यावर के पादरी बिहारीलाल से ऋषि जी की उपस्थिति में राव बहादुरसिंह जी का ईसाई मत और वैदिक धर्म पर शास्त्रार्थ हुआ। इस दृष्टि से राजस्थान ने ऋषि के जीवनकाल में राव बहादुरसिंह जी के रूप में आर्यसमाज को पहला शास्त्रार्थ महारथी दिया। **यह भी तो एक क्रान्ति हो गई कि आर्यसमाज ने ब्राह्मणेतर परिवार से एक धर्मरक्षक शास्त्रार्थ महारथी दिया। कभी कोई सोच ही नहीं सकता था कि एक राजपूत भी शास्त्रार्थ समर का सेनानी बन सकता है।**

मसूदा से रायपुर व ब्यावर की प्रचार-यात्रा की। यहाँ ठाकुर हरिसिंह जी रायपुर की ठाकुरानी का निधन हो गया। ऋषि जी को सूचना देने वाले ने ठाकुर जी के निवास पर जाकर शोक प्रकट करने के लिए कहा। आपने कहा—**"मरना, जीना मेरे लिए एक समान है। मैं साधु हूँ। मैं शोक अथवा प्रसन्नता प्रकट नहीं करता।"**

यहीं रायपुर में कोहाट के रूपसिंह जी (जिन्होंने पं० भगवद्दत्त जी को ऋषि के पत्र-संग्रह की प्रेरणा दी) ने कोहाट (सीमाप्रान्त) का निमन्त्रण दिया। ब्यावर होकर ऋषि फिर मसूदा पधारे। मसूदा से आप बनेड़ा गये।

बनेड़ा में महाप्रतापी ब्रह्मचारी के तप, तेज की धूम मच गई। १० अक्तूबर से २६ अक्तूबर १८८१ तक राजा गोविन्दप्रसाद जी बनेड़ा की विनती पर इस राज्य को तृप्त किया। राव बहादुरसिंह इन्हीं राजाजी के भांजे थे। राजा तो विद्वान् थे ही। राजकुमार भी मेधावी थे। शंका-समाधान में राजा जी ने स्वयं अच्छी रुचि दिखाई। **राजगुरु श्री नगजीराम की डायरी में आज भी महर्षि के भव्य भाल, ब्रह्मचर्य से तपे शरीर**

का वर्णन पढ़कर आर्यजनों का मुखमण्डल चमक उठता है। हर कोई इतराता है कि हमारा प्यारा ऋषि ऐसा अखण्ड महाप्रतापी ब्रह्मचारी था।

चित्तौड़गढ़ मेवाड़ की यात्रा

२७ अक्तूबर से २० दिसम्बर १८८१ तक कविराजा श्यामलदास का पत्र पाकर चित्तौड़ (मेवाड़) निवासियों को दर्शन दिये। **महाराणा सज्जनसिंह जी की नास्तिकता से कविराजा चिन्तित थे।** ऋषि की कीर्ति सुनकर ऋषि को बुलाने का मुख्य प्रयोजन यही था। वायसराय के दरबार के साथ ऋषि के दरबार की भी मेवाड़ में सब ओर चर्चा फैल गई। महाराणा जी ने राजधर्म पर जब ऋषि का खरा-खरा सत्योपदेश सुना तो **आपने उस दिन जान लिया कि केवल यही व्यक्ति है जो बिना लागलपेट के सत्योपदेश करता है।**

आपने सबको गायत्री का उपदेश दिया। आपने इस बात का खण्डन किया कि गायत्री मन्त्र को ऊँचा बोलकर नहीं पढ़ना चाहिए। आपने स्वयं उच्च स्वर से गायत्री का पाठ किया। मुसलमानों को भी सुनाया। कहा—"**यह किसी वर्ग या व्यक्ति विशेष के लिये नहीं। ईश्वर का सद्ज्ञान सबके लिये है।**"

देवता ने आपका सिर झुका लिया

व्याख्यान के पश्चात् एक बार आप भ्रमणार्थ कुछ सज्जनों के संग जा रहे थे। चलते हुए मूर्त्तिपूजा पर एक पण्डित के प्रश्नों का उत्तर भी देते रहे। एक स्थान पर अकस्मात् रुक गये। वहाँ एक पेड़ के नीचे एक देवता की ग्रामीणों ने स्थापना कर रखी थी। वहीं कुछ बच्चे खेल रहे थे। ऋषि ने बड़ी गम्भीर मुद्रा में सिर झुकाया और आगे चल दिये। स्वामी जी को सिर नवाते देखकर वह पण्डित बोला—"देखा! देवता ने अपनी शक्ति से आपका सिर झुका लिया।"

ऋषि ने खड़े होकर बच्चों में खेल रही एक अबोध बालिका की ओर संकेत करेक कहा—"**देखते नहीं हो! वह मातृशक्ति की प्रतीक**

जिसने तुम्हें जन्म दिया।'' यह सुनकर सारी टोली में सन्नाटा छा गया।

मातृशक्ति को शीश नवाकर, करते हैं सम्मान दयानन्द।
मानवता का मान दयानन्द, दीन दुखी का त्राण दयानन्द॥

पं० चमूपति जी ने इस घटना पर हृदयस्पर्शी पद्य लिखा है—

है मा जिसकी नज़रों में मासूम बाला।
दयानन्द स्वामी! तिरा बोल बाला॥

कुछ अदूरदर्शी दुराग्रही द्वेषी जन महर्षि के बारे में कई प्रकार से विषैला मिथ्या प्रचार भी करते रहे। महाराणा जी ने विदा करते समय बहुत मान-सम्मान किया।

एक दिन ऋषि जी ने कई सरदारों के सामने स्वामी आत्मानन्द जी से कहा कि सब जन मिलकर यहाँ एक गुरुकुल की स्थापना करें।

इन्दौर होकर मुम्बई पधारे

२१ दिसम्बर को आप दूसरी बार इन्दौर पधारे। महाराजा तुकाजी राव तो वहाँ नहीं थे, परन्तु उनके न्यायाधीश ने श्रद्धा व आदरभाव से ठहरने की सब व्यवस्था कर दी। एक सप्ताह यहाँ रुककर मुम्बई की अन्तिम यात्रा के लिए चल पड़े। ३० दिसम्बर से २४ जून १८८२ तक बालकेश्वर गोशाला पर डेरा लगाया। आर्यसमाज मुम्बई के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होकर उपदेश दिया। शंका-समाधान व मार्गदर्शन करते रहे।

दलितोद्धार की प्रबल प्रेरणा—सेना से सेवा निवृत्त एक प्रेमी दर्शन करने आया तो उसे कहा कि तुम्हें पैंशन मिलती है अब तुम भील व कोल आदि भोले-भाले भाइयों में धर्म-प्रचार करो। परकीय मतों के सांस्कृतिक आक्रमण से उनकी रक्षा करो।

स्वामी जी की उपस्थिति में ही काकड़वाड़ी मन्दिर के लिए दान एकत्र करके भूमि क्रय कर ली गई।

जगत् के उपकार के लिए महर्षि ने गोरक्षा अभियान छेड़ा। देश को स्वतन्त्र हुए सत्तर वर्ष होने जा रहे हैं। अहिंसा की दुहाई देने वाले महात्मा गांधी के देश में कुटिल नेताओं की कृपा से गोरक्षा के लिए सरकार कुछ

कर पाएगी ऐसी आशा कतई नहीं की जा सकती।

मोरबी नरेश वाघ जी से इस यात्रा में ऋषि की भेंट हो गई। ऋषि ने महाराजा से कहा—"इस व्याख्यान के देने वाला आपके राज्य की प्रजा है।" यह पता नहीं चला कि तब वाघ जी ने उत्तर में क्या कहा।

खण्डवा, इन्दौर व रतलाम होकर **ऋषिवर २५ जुलाई को चित्तौड़ पधारे।** १० अगस्त तक चित्तौड़ में ही रहे। ११ अगस्त को मेवाड़ की राजधानी उदयपुर आन पधारे। गोवर्धन विलास तक यहाँ भ्रमणार्थ जाते। जब महाराणा जी ने आना आरम्भ किया तो गुलाब बाग में ही उसी अनुमान से भ्रमण कर लिया करते थे। डेरा भी तो वहीं नौलखा राजप्रसाद में था।

उदयपुर के पुलिस अधीक्षक तथा जज मौलवी अब्दुलरहमान से ग्यारह सितम्बर १८८२ से १३ सितम्बर तक तीन दिन लिखित शास्त्रार्थ हुआ था। मेवाड़ राज्य के एक अधिकारी श्री ब्रजनाथ इस शास्त्रार्थ के तीन लेखकों में से एक थे। इन्हीं से पं० लेखराम जी को शास्त्रार्थ की प्रति मिली थी। सम्पूर्ण जीवन चरित्र में हमने इसे बड़ी सावधानी से उद्धृत किया है। ऋषि ने महाराणा जी की दिनचर्या का सुधार किया। राजकाज में कभी भी श्री स्वामी जी ने हस्तक्षेप नहीं किया। महाराणा जी ने एकलिङ्ग की गद्दी का महन्त बनाने का भी प्रस्ताव दिया। ऋषि प्रलोभन में आने वाले थे ही नहीं। अपना स्वीकार पत्र यहाँ पंजीकृत करवाया। **महाराणा जी को परोपकारिणी सभा का प्रधान नियत कर दिया। कविराजा श्यामलदास की उस समय की रचनाओं में स्वामी जी महाराज के लिए ऋषि व यतिराट् आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है।** ऋषी द्वेषी ज्ञानी दित्तसिंह की पुस्तिका में भी उनके लिए ऋषि, महर्षि शब्दों का प्रयोग किया गया है। महाराणा जी ने विदाई के समय अभिनन्दन-पत्र भेंट किया।

महर्षि श्री नाहरसिंह जी के अनुरोध पर ८ मार्च १८८३ को शाहपुरा पधारे। २६ मई तक यहाँ डेरा रहा। राजा प्रजा सब पर महाराज ने अमिट छाप छोड़ी। नाहरसिंह जी ने जोधपुर जाने से बहुत रोका और कहा—**"चले हो तो वहाँ वेश्यागमन का कड़ा खण्डन न करना।"** ऋषि

का उत्तर था—"**मैं बड़े-बड़े वृक्षों को नुहारने से नहीं कुल्हाड़े से काटता हूँ।**" बुराई से लड़ाई करते हुए यतिराट् दयानन्द सब कष्ट सहन करने को तैयार थे। अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिए प्राणोत्सर्ग करने से भी नहीं सकुचाते थे। नाहरसिंह जी ने भावभीनी विदाई देते हुए कई कर्मचारी सेवक भी साथ भेजे जो **महर्षि के पत्र के अनुसार सब निकम्मे व कामचोर थे।**

३१ मई को जोधपुर आगमन[१]

२७ मई १८८३ को शाहपुरा से अजमेर पहुँचे और २८ मई को भी वहीं रहे। रात्रि देर से आपकी गाड़ी (१२ बजे के पश्चात्) जोधपुर के लिए चली। २९ मई को आप पाली पहुँचे। **३० मई को चलकर ३१ को जोधपुर पहुँच गये।** जोधपुर के महाराजा ने ऋषि के वहाँ पहुँचने के २७ दिन पश्चात् भेंट की। सज्जनसिंह जी के व्यवहार तथा जोधपुर दरबार के व्यवहार में बहुत अन्तर है। इसे शब्दों में नहीं बताया जा सकता। सहृदय जन व सत्यान्वेषी इसे अनुभव कर सकते हैं। **महाराजा जसवन्तसिंह आस लगाय बैठा था कि स्वामी दयानन्द उन्हें चलकर स्वयं मिलने आयेगा, परन्तु यह उसका भ्रम था। ऋषि दयानन्द इस प्रकार का संन्यासी नहीं था। वह काशी के स्वामी विशुद्धानन्द जैसा साधु नहीं। वह सम्राट् तो नहीं यतिराट् परिव्राट था। इतिहास ने एक नये ढंग का संन्यासी देखा।**

व्रतधारी बलवान दयानन्द!

स्वामी जी के डेरे पर, सीढ़ियों के समीप मारवाड़ के एक पण्डित शिवदान जी उतरे हुए थे। उनके लिए बड़ी महारानी जी ने अपनी चार-पाँच बांदियों के हाथ कुछ फल भिजवाये थे। वे पण्डित जी का पता

१. शाहपुरा से अजमेर तथा अजमेर से जोधपुर तक यात्रा की तिथियों में बड़ी गड़बड़ है। ऋषि के पत्र-व्यवहार से मिलान करके इन्हें शुद्ध किया गया है। पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक ने अजमेर से चलने की तिथि २८ मई ठीक नहीं दी है। ट्रेन १२ बजे के पश्चात् चली सो तिथि बदल गई। श्रद्धेय मीमांसक जी की टिप्पणी (२८ मई) अशुद्ध है। घासीराम जी का मत प्रामाणिक है।

पूछती हुईं स्वामी जी महाराज के कक्ष की ओर पहुँच गईं। पहरे वाले ने पूछने पर समझा यह ऋषि जी के लिए फल लाई हैं। तभी महाराज ने उन्हें देखकर ऊँची आवाज़ में गर्जना की और उठ खड़े हुए। ये कैसे इधर आ गईं। स्वामी जी सर्वत्र एकान्त स्थान में और स्त्रियों के आने-जाने के स्थान से दूर रहते थे। मर्यादा का व्रतधारी दयानन्द सदैव कड़ाई से पालन करते थे। वे इतिहास में वर्णित विरले ब्रह्मचारियों की पंक्ति में देखे जा सकते हैं।

मारवाड़ के एक बड़े पण्डित गणेशपुरी को स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने को कहा गया। उसने स्पष्ट कह दिया कि मैं इनसे शास्त्रार्थ नहीं कर सकता। राव राजा सोहनसिंह नाम का एक नवीन वेदान्ती ब्रह्मर्षि जी से निरुत्तर होकर चला गया।

सर प्रतापसिंह के प्रश्न के उत्तर में कहा **यदि प्रजा से न्याय करोगे तो तुम्हारा मोक्ष हो सकता है।**

जोधपुर में भी आपकी दिनचर्या वही रही जो बरेली, उदयपुर, शाहपुरा व मसूदा आदि में देखी गई।

धमकियाँ मिलती रहीं

सत्यवादी दयानन्द निर्भय होकर सत्य कहा करते थे। मत पंथों की समीक्षा करने पर उन्हें कई बार धमकियाँ दी गईं। राजाओं व सरदारों की विलासिता पर रक्तरोदन करते ही थे। व्याख्यानों में भी खुलकर वेश्यागमन के लिए सरदारों, रजवाड़ों आदि को लताड़ फटकार लगाते थे। जोधपुर नरेश के सुधार के लिए उसे एक लम्बा पत्र लिखा। उस पत्र में जिन दोषों, दुर्व्यसनों से बचने के लिए उपदेश दिया उनमें से एक वेश्यागमन भी है। नन्ही वेश्या महाराजा जसवन्तसिंह की सबसे बड़ी दुर्बलता थी। ऋषि ने राजा की इस दुखती नस को भी उक्त पत्र में छेड़ दिया। बस फिर क्या था मतवादियों ने, वेश्या नन्ही भगतन तथा सद्धर्म के प्रकाश से दुखी सब तत्त्वों ने षड्यन्त्र रचकर महर्षि के प्राण लेने की ठान ली। षड्यन्त्रकारियों ने ऋषि के पाचक को गांठकर उससे रात्रि सोते समय दूध में संखिया पीस कर डलवा दिया। विषपान से ऋषि का बलिदान हो

गया। २९ सितम्बर १८८३ को उनको विष दिया गया। **उनका उपचार करने में राज्य ने जिस क्रूरता का व्यवहार किया उसका इतिहास में दूसरा उदाहरण खोज पाना अति कठिन है।**

औषधि-उपचार करने वाला डॉ० अलीमर्दान जोधपुर राज्य का तृतीय श्रेणी का डॉक्टर था और वह प्रथम श्रेणी का चापलूस था। उसने इलाज ही ऐसा उलटा किया कि महाराज के बचने की सम्भावना ही न रहे। उत्तम कोटि के अधिक योग्य डॉक्टरों को बुलाया ही न गया। महाराजा ने, उसके भाई प्रतापसिंह ने घड़ियाली आँसू ही बहाये। **प्रतापसिंह तो ऋषि जी को मृत्यु के मुँह में छोड़कर आप पूना में जुआ खेलने चला गया। वहाँ पोलो के खेल पर लाखों का जूआ चलता था। उसने वहाँ जाना परम आवश्यक जाना।**

शाहपुरा तक की यात्राओं के समाचार आर्यों को पत्रों द्वारा मिलते रहे। जोधपुर से प्रचार का एक भी समाचार कर्नल प्रतापसिंह ने बाहर नहीं निकलने दिया। यह कहना तो कठिन है कि इस षड्यन्त्र में किस-किस का कितना हाथ है। प्रतापसिंह तो गोरों का परम सेवक था ही। अंग्रेजों ने उसे सबसे बड़े सम्पन्न शासक निज़ाम हैदराबाद से भी अधिक उपाधियाँ दे रखी थीं। **अंग्रेज़ सरकार के एक और वफ़ादार और राजभक्ति के गीत गाने वाले कादियानी नबी ने तो आप ही ऋषि की हत्या का श्रेय लेने की खुली घोषणा कभी की थी** जिसको किसी ने कोई महत्त्व ही न दिया।[१] ऐसे लोगों की इस पाप में भागीदारी तो अवश्य रही, परन्तु किस-किस की कितनी भागीदारी थी, यह एक पृथक् प्रश्न है।

क्या बीती?

१६ अक्तूबर तक डॉ० अलीमर्दान का इलाज चलता रहा। १५ अक्तूबर को डॉ० ऐडम रेज़िडेंसी डॉक्टर को बुलाया गया। उसके परामर्श से स्वामी जी को आबू पर्वत पर भेजने का निश्चय किया गया। आश्चर्य का विषय है कि तार आदि के युग में इतने बड़े महापुरुष की चिन्ताजनक

१. द्रष्टव्य, 'हकीकत-उल-वही' उर्दू

स्थिति की आर्यजगत् व देश वासियों को बाहर भनक ही न पड़ने दी गई। १२ अक्तूबर को अजमेर आर्यसमाज के एक सभासद लाला जेठमल सोढा ने राजपूताना गज़ट में महाराज की रुग्णता का समाचार पढ़कर वहाँ के आर्यों को इसकी सूचना दी तब उन्हें ऋषि के पास जोधपुर भेजा गया। ऋषि का पता करने न प्रताप आया और न ही जसवन्तसिंह, न तेजसिंह।

१६ अक्तूबर को ऋषि को पालकी में बिठाकर आबू के लिए महाराजा जसवन्तसिंह ने विदाई देते समय कहा—"यह मेरे लिए कलङ्क है[१], यदि स्वस्थ होकर जाते तो अच्छा था।" १८ को ऋषि खारची पहुँचे और वहाँ से लाला जेठमल अजमेर के पीरजी से औषधि लेने गये। २१ अक्तूबर को रेलमार्ग से आबू रोड स्टेशन पर पहुँचे। २६ अक्तूबर को सर प्रतापसिंह आबू पहुँच गया। उसी दिन ऋषि ने अजमेर के लिए प्रस्थान किया।

एक मनगढ़न्त कहानी

कर्नल प्रताप सिंह का गुणगान करते हुए भारतीय जी ने अपने ग्रन्थ के दूसरे भाग में एक कहानी दी है कि प्रतापसिंह ने ऋषि को पूछा—"क्या डॉ० अलीमर्दान पर उन्हें विष देने का सन्देह है ? यदि ऐसा है तो स्पष्ट कहें, ताकि उस पर अभियोग चलाया जा सके।"[२] इस हदीस इस गढन्त का स्रोत लेखक ने नहीं लिखा।

जिस मौत से दुनिया प्यार करे

रात्रि तीन बजे आप अजमेर पहुँच गये। प्रकृति डाँवाँडोल रही। २४ अक्तूबर को पूछने पर कहा—"प्रकृति अब अच्छी है।" ठाकुर भोपाल सिंह जी अलीगढ़ वालों ने जिस श्रद्धा भक्ति से ऋषि की सेवा की उसे शब्दों में कौन बता सकता है ? ऋषि ने मसूदा जाने का पहले वचन दे रखा था। २८ अक्तूबर को कहा—"हमें मसूदा ले चलो।" लाहौर से

---

१. यह महाराजा का अपराध बोध ही तो था।

२. तत्कालीन किसी पत्रिका, किसी व्यक्ति ने यह कहानी नहीं दी। यह विशुद्ध गप्प है। 'आर्यसमाचार' में छपे लेख में मनगढ़न्त गप्प जोड़ दी गई है।

लाला जीवनदास व पं० गुरुदत्त भी पहुँच गये। ३० अक्तूबर दिन मंगलवार दीपमाला पर्व पर सायंकाल समय प्रार्थना-उपासना करते हुए कहा— "**प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो, पूर्ण हो, पूर्ण हो**" कहकर नश्वर देह का परित्याग कर गये।

गुरुदत्त यह दृश्य देखकर बदल गये। न प्रश्नोत्तर हुआ, न शंका-समाधान और न ही आपने ऋषि का कभी उपदेश ही सुना। बस आँखों से आँख मिलाई। प्रथम बार और अन्तिम बार आपने ऋषि-दर्शन किया। मन और मस्तिष्क में संशय के, नास्तिकता के जो भाव भरे थे सब एकदम विनष्ट हो गये। अब गुरुदत्त पक्का व सच्चा आस्तिक बनकर लाहौर लौटा। लिखने को तो बहुत कुछ है, परन्तु पुस्तक के आकार को ध्यान में रखकर लेखक विवश है। भक्तराज अमींचन्द के पद्य को उद्धृत करते हुए महर्षि के देह-त्याग—अमर बलिदान की घटना का चित्र-चित्रण करके इस विषय में लेखनी को विराम देते हैं—

परिव्राजकाचार्य स्वामी दयानन्द,
पधारा है परलोक डंके बजाता।

१६ नवम्बर १८६९ को काशी शास्त्रार्थ भी मंगलवार सायं समय ही हुआ था और आज अजमेर में भी मंगलवार सायं समय महर्षि बलिदान पथ के पथिक बनकर अमर पद को प्राप्त कर गये।

'शंकर' दिया बुझाय दिवाली को देह का
कैवल्य के विशाल बदन में समा गया

महर्षि परलोक गमन की मुख्य-मुख्य घटनाएँ देकर इनके आध्यात्मिक व ऐतिहासिक महत्त्व पर यहाँ कुछ विशेष विचार करने की आवश्यकता है। पाठकवृन्द! महर्षि के देह-त्याग से पूर्व की यह सब घटनाएँ तथा ऋषिवर के कहे शब्द अपने आप में एक बहुत बड़ा उपदेश हैं। ऋषि जी 'आर्याभिविनय' में 'विनय' संख्या ४५ में लिखते हैं—"**तव, प्रणीतिषु**" आपकी आज्ञा का 'प्रणय'—इसे अंग्रेज़ी में Wedded To Thy Divine Will कहा जाएगा। शब्दों व अक्षरों में व्यक्त की गई विनय को अन्तिम-वेला में आश्चर्यचकित करते हुए आचरण में अनूदित कर दिखाया, जब

यह कहा—"**प्रभु! तेरी इच्छा पूर्ण हो, पूर्ण हो, पूर्ण हो।**" ऋषि का यह वाक्य अध्यात्म जगत् में व्याप्त हो गया। भक्त, सन्त, हिन्दू, सिख, मुसलमान भारत भर में प्रवचनों में कहा करते हैं—

'राज़ी हैं हम उसी में जिसमें रज़ा है तेरी'

ऋषि के महाप्रयाण के पश्चात् ही किसी मुस्लिम कवि ने ऋषि के उपर्युक्त वचन का यह पद्यानुवाद कर दिया। "एक मास के पश्चात् आज आराम का दिवस है" और स्वयं को 'ईश्वरेच्छा' में बताया। क्या इनका मर्म आस्तिक जन जानने का प्रयास करेंगे? "**कुछ कुछ तेज व अंधकार का भाव है**" ये शब्द वेद के प्रसिद्ध मन्त्र '**वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्**' का सरल अनुवाद ही तो था। परम पुरुष परमेश्वर का प्यारा मोक्ष-मार्ग पर चलते-चलते अपने लक्ष्य तक पहुँच गया। उसी घड़ी गद्‌गद् होकर क्षौर करवाया। नाई को चार पैसे की बजाय पाँच रुपये दिलवाये। मुख से 'हाय' का शब्द एक बार भी न निकला। प्रकाश जी ने लिखा है—

जब कि बुझने लगा शहर अजमेर में, देह दीपक दयानन्द ऋषि राज का।
तेरी इच्छा हो पूर्ण हे प्यारे प्रभु, बोलकर वाक्य यह मुस्कराने लगे।

भक्तराज पं० चमूपति भाव-भरित हृदय से लिखते हैं—

औरों के लिए मरने वाले, मरकर भी हमेशा जीते हैं
जिस मौत से दुनिया प्यार करे उस मौत की अज़मत क्या होगी?

मृत्यु के समय शोक और मोह बड़ों-बड़ों को परास्त कर देता है। महर्षि ने मोह व शोक दोनों पर पूर्ण विजय प्राप्त की। अन्त समय स्वामी आत्मानन्द जी से कहा—"**यह देह है इसका अच्छा क्या होगा?**" फिर शिष्य से कहा—"**आनन्द से रहना।**" संन्यासी गोपालगिरि जी से भी तब यही शब्द कहे। अन्त समय की एक-एक घटना पर मनन चिन्तन करके ही हम ऋषिवर के व्यक्तित्व की महिमा को समझ सकते हैं। महात्माओं के जप, तप, सेवा, संयम की सफलता की कसौटी मृत्यु का समय ही होता है। महर्षि उस पर खरे उतरे, यह इतिहास की साक्षी है। आप उस युग के बड़े-बड़े व्यक्तियों की मृत्यु के दृश्य पर भी विचार कीजिये। हज़रत ईसा महान् थे, परन्तु उनको ईश्वर से बहुत शिकायत

थी कि आकाशस्थ प्रभु उन्हें छोड़ गया। आजन्म ब्रह्मचारी योगेश्वर दयानन्द कहते हैं—प्रभु! तेरी इच्छा "पूर्ण हो, पूर्ण हो, पूर्ण हो।"

दीपमालिका की शुभ निशि में। घर घर अनुपम आभा आई॥
इच्छा पूर्ण होय प्रियतम की। रोम रोम ऋषि तनु हर्षाई॥
कर दीपक उत्सुक शरीर को। जगमग जगमग ज्योति जगाई॥

—पं० चमूपति

अन्तिम संस्कार

ऋषि की मृत्यु का समाचार सुनकर दो संन्यासी कहीं से आ गये। उनका कहना था कि हम तो आजकल की रीति के अनुसार साधु-संन्यासी होने के कारण इनका दाहकर्म नहीं होने देंगे। हम तो शव को भूमि में गाड़ेंगे। आर्यों ने उनके स्वीकार पत्र की दुहाई देकर कहा, हम तो दाहकर्म ही करेंगे। अगले दिन शास्त्रविधि अनुसार शव को स्नान आदि करवाकर अरथी को धूमधाम से बाज़ारों से होकर मलूसर श्मशान भूमि में आर्यजन ले गये। अरथी इतनी भारी थी कि १६ व्यक्तियों ने अरथी को कन्धा दिया। लाला जीवनदास जी लाहौर जैसे कई व्यक्तियों को थक जाने के कारण कन्धा बदलना पड़ा। चन्दन की चिता में शरीर को रखा गया। रामानन्द जी तथा स्वामी आत्मानन्द जी ने काष्ठों में अग्नि दी।

महाराणा सज्जनसिंह की चाहना थी

ऋषि की चिन्ताजनक स्थिति का समाचार सुनकर महाराणा जी ने पण्डिया मोहनलाल के द्वारा कहला भेजा कि यदि शरीर छूट जाये तो मेरे आने तक चार पाँच दिन तक शव को रखा जाये। तब मेवाड़ से अजमेर की रेल नहीं थी। इतने दिन शव को रखना सम्भव नहीं था। मेवाड़ राज्य के प्रतिनिधि तो अन्त्येष्टि संस्कार में थे ही। धन्य था जोधपुर दरबार! वहाँ का एक भी व्यक्ति तब अजमेर नहीं पहुँचा। **आबू से विदा करके फिर किसी ने अजमेर की ओर मुँह उठाकर देखा ही नहीं।**

श्री भवानीलाल भारतीय ने इन्हीं दिनों 'दयानन्द सन्देश' में लिखा है नैनूराम ब्रह्मभट जोधपुर से अजमेर तक साथ आया था। नैनूराम का

यह कथन मिथ्या है। मनगढ़न्त है। दीवान हरबिलास जी आदि किसी प्रत्यक्षदर्शी ने, लाला जेठमल जी ने व किसी भी पत्रिका ने जोधपुर से किसी के अजमेर साथ आने का कोई उल्लेख नहीं किया।[१]

१. आर्यसमाचार, मासिक मेरठ का वह अंक हमारे पास है जिसमें २९ सितम्बर से लेकर ३१ अक्तूबर की एक-एक घटना का वर्णन है। नैनूराम की उसमें कतई चर्चा नहीं। जेठमल जी की लम्बी कविता में भी नैनूराम का नाम तक नहीं।

विविध घटनाएँ

'आर्यसमाचार' में छपा इतिहास का एक अध्याय

आषाढ़ संवत् १९४१ के अंक में 'आर्यसमाचार' मेरठ में परोपकारिणी सभा के दिसम्बर सन् १८८३ के उत्सव का वृत्तान्त प्रकाशित हुआ था। इसके साथ दयानन्द आश्रम अजमेर के लिए २९ दिसम्बर १८८३ से लेकर ३० अप्रैल १८८४ तक प्राप्त हुए दान तथा दानियों के नाम की भी सूची छपी है। देशभर के ऋषि-भक्तों ने दान भेजा और अजमेर पहुँचे भी। २१२ के लगभग दानदाताओं में जोधपुर के एक भी व्यक्ति का नाम नहीं मिलता। मारवाड़ से किसी ने एक खोटा पैसा भी दान नहीं भेजा। मेवाड़ के १५३ व्यक्तियों ने ऋषि की स्मृति में दान दिया।[१] जोधपुर में भी कोई तो ऋषिभक्त उस समय होगा। न जाने किस कारण से व किस के दबाव में न तो कोई अजमेर आ सका और न दान देने का साहस किसी को हुआ।

जोधपुर विषयक भ्रम-भञ्जन

'अवध रिव्यु' उर्दू मासिक में कर्नल प्रतापसिंह ने अपना संक्षिप्त जीवन परिचय छपवाया। वह पुनः हमने छपवा दिया। इसमें ऋषि का नाम, वेद की चर्चा, आर्यसमाज का कतई उल्लेख नहीं। ऋषि के जोधपुर आगमन की गन्ध तक नहीं। ऐसे ही राधाकिशन सम्पादित कर्नल की विस्तृत जीवनी में ऋषि की कोई घटना, कोई संस्मरण और जोधपुर आने की कोई चर्चा नहीं। ये दोनों दस्तावेज़ हमने परोपकारिणी सभा को सौंप दिये हैं। भारतीय जी ने अपनी एक पुस्तक में प्रतापसिंह की महिमा में ३३ पृष्ठ लिखकर एक कीर्तिमान स्थापित किया है। ऐसे ही नन्ही को चरित्र की पावनता का प्रमाण-पत्र देकर यह लिखा है कि वह वेश्या नहीं थी, वैष्णव थी। वह कोठे वाली नहीं थी। राई के महल में रहती थी।

---

१. द्रष्टव्य, 'आर्यसमाचार' आषाढ़ संवत् १९४१, पृष्ठ ७१-९१

हमारा निवेदन है कि कोठों वालियाँ अपने आप कोठियों, महलों में आ जाया करती हैं। महाराजा को ऋषि ने फिर वेश्यागामी क्यों मान लिया ?[१] आज तक वेश्या नन्ही की किसी ने चिन्ता नहीं की थी। राज परिवार भी क्यों करता ? प्रतापसिंह ने ही तो उसे महल से निकाला था। चलो! उस बिचारी को भारतीय जी के रूप में दोषमुक्त करने वाला एक वकील मिल ही गया। इन तथ्यों का उल्लेख किये बिना सत्यवादी महर्षि की यह जीवनी अधूरी ही रहती।

किस-किस का प्रमाण व साक्षी चाहिये ?

महर्षि दयानन्द की बहुमुखी प्रतिभा, उनके सद्‌गुणों, अखण्ड ब्रह्मचर्य, तप, त्याग, संघर्षमय जीवन, आत्मोत्सर्ग की भावना, सुधार उपकार के क्षेत्र में उनकी उपलब्धियों, योग साधना तथा विद्वत्ता के कारण देश का अनिष्ट चाहने वाले तत्त्वों को उनके यश से बहुत ईर्ष्या रही है। इसी प्रकार के लोगों ने यह भ्रम फैलाने का पाप किया कि ऋषि का बलिदान विष देने से नहीं हुआ। अब तो राजस्थान के तत्कालीन इतिहासकार श्री वारहट का ग्रन्थ छपने से श्री स्वामी जी को विष दिये जाने की ऐसी पुष्टि हो गई है कि इस निर्विवाद तथ्य को कोई चुनौती नहीं दे सकता। हम एक लम्बे समय से राजस्थान के प्रख्यात इतिहासकार श्री गौरीशंकर जी ओझा का प्रमाण देते चले आ रहे हैं। श्री जेठमल सोढा ने जो ऋषिभक्तों में से सबसे पहले जोधपुर पहुँचे, उन्होंने भी लिखा है कि ऋषि के रोम-रोम में विष प्रविष्ट हो चुका था। अजमेर के पीर जी ने संखिया देने की बात कही। तत्कालीन आर्य नेता हरबिलास शारदा व जोधपुर के राव राजा तेजसिंह ने भी विष दिया जाना लिखा है। पं० लेखराम जी जब जोधपुर ऋषि-जीवन की खोज के लिए गये तो सर प्रतापसिंह का पाप काँप उठा। आपने पण्डित जी के पीछे गुप्तचर छोड़ दिये। गुप्तचर छाया के सदृश पं० लेखराम के आगे-पीछे रहे। ऐसा स्वामी श्रद्धानन्द जी व स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी दोनों ने लिखा है। **प्रश्न सीधा सा है कि फ़कीर**

---

१. द्रष्टव्य, 'ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन' दूसरा संस्करण, पृष्ठ ४४३-४६४।

लेखराम के पीछे गुप्तचर छोड़ने का प्रयोजन क्या था?

प्रिं० श्रीराम शर्मा आदि कुछ लोगों ने एक नया शोशा छेड़कर जनता को भ्रमित करना चाहा। स्वामी दयानन्द जी को आम बहुत भाते थे। अधिक आम खाने से वे रुग्ण हो गये। रोग बिगड़ गया और वे चल बसे। कोई विष नहीं दिया गया। आचार्य विरजानन्द जी झज्जर ने बहुत अच्छा प्रश्न उठाकर इस दुष्प्रचार का निराकरण कर दिया है कि यह कुतर्क किसी शरारती मस्तिष्क की उपज है। देश के किसी भी भाग में आज भी अगस्त का अन्त आते-आते आम का फल बाज़ार में नहीं मिलता। ऋषि को विष दिये जाने की घटना २९ सितम्बर को घटी थी। तब जोधपुर **में आम कहाँ से आ गया? सितम्बर में तो महाराष्ट्र, सहारनपुर, होशियारपुर, गुरदासपुर (जो आमों की उपज के लिए प्रसिद्ध हैं) में भी आम कहीं दिखाई नहीं देते।**

ऋषि दयानन्द ने क्या किया? क्या दिया?

इस विषय में जितना भी लिखा जाए थोड़ा है तथापि हम गागर में सागर की उक्ति के सदृश इस अध्याय में संक्षेप से ठोस सामग्री देने का प्रयास करेंगे। कवि के एक गीत की ये पंक्तियाँ गुनगुनाते हुए पाठकों को भी आनन्द आयेगा—

जिसके तेजोमय जीवन से जाग उठा सारा संसार।
उस नरनामी योगी ध्यानी दयानन्द का जय जयकार॥
कौन गिने और कौन गिनावे 'जिज्ञासु' उसके उपकार!
उस नरनामी योगी ध्यानी दयानन्द का जय जयकार॥

आधुनिक भारत के एक प्रसिद्ध इतिहासकार श्री ईश्वरीप्रसाद ने 'सरस्वती' मासिक के सन् १९२९ के एक अंक में अपने एक पठनीय लेख में लिखा था—**"हिन्दूसमाज में स्वामीजी ने हलचल मचा दी। अदम्य निर्भीकता के साथ उन्होंने स्वेच्छाचारी, निरंकुश "पोपों" का सामना किया और काशी के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ में अपनी विद्वत्ता का सिक्का जमा दिया। स्वामी जी के विचारों का देश में वही असर**

हुआ जो बम्ब-गोले के गिरने का किसी शान्त सभा में हो। आर्यसमाज के विस्तृत कार्यक्रम ने हिन्दू जाति की मृत हड्डियों में फिर से जान डाल दी। यह सब सामाजिक उथल-पुथल थी। राष्ट्रीय आन्दोलन का अभी नामो-निशान नहीं था। अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध किसी को ताब न थी कि ज़बान निकाले। आजकल के युवकों के लिए उस परिस्थिति को समझना दुस्तर है।"

यशस्वी इतिहासकार श्रीयुत काशीप्रसाद जयसवाल जी ने लिखा है—"The Sanyasi Dayanand gave freedom to the soul of the Hindus, as did Luther unto the Europeans." अर्थात् संन्यासी दयानन्द ने हिन्दुओं के आत्मा को ऐसे ही स्वतन्त्र करवाया जैसे योरुपियन लोगों को लूथर ने।

प्रयाग से प्रकाशित होने वाले लीडर (Leader) के प्रसिद्ध सम्पादक व भारत के एक माननीय नेता श्री सी०वाई० चिन्तामणि ने बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में ऋषि दयानन्द की देन पर यह मार्मिक वाक्य लिखकर इतिहास की बहुत बड़ी सेवा की—"Where there is a work to do there one does not miss the Aryasamaj." **अर्थात् जहाँ कहीं भी करने योग्य कोई कार्य, जहाँ भी सुधार, उपकार व प्रचार की आवश्यकता है वहाँ कोई आर्यसमाज को अनुपस्थित नहीं पाएगा।** आर्यसमाज के सेवक वहाँ आपको सेवा करते हुए दिखाई देंगे।

ऋषि दयानन्द ने देखा कि भारतीय साधुओं को केवल अपने मोक्ष की ही चिन्ता है। वे संसार से उदासीन रहने को ही वैराग्य, भक्ति की पराकाष्ठा व सन्तपना जानते व मानते थे।

'कोई हो नृप हमें क्या हानि'

कबीरा तेरी झोंपड़ी गल कटियन के पास।
जो करन गे सो भरन गे तू क्यों भयो उदास॥

जहाँ देश के विचारकों की, महात्माओं की ऐसी सोच हो वहाँ देशोन्नति

---

१. द्रष्टव्य, Dayanand Commenoration Volume 1933 A.D. page 162.

व विकास कैसे सम्भव है ? वहाँ पराधीनता, पतन, दुःख व दारिद्र्य न हो तो क्या हो ? ऋषि का घोष था कि मुझे अपनी मुक्ति की चिन्ता नहीं, मैं करोड़ों देशवासियों की बन्धन-कड़ियाँ काटने आया हूँ। ऋषि की इस सोच ने युग को पलट कर रख दिया। स्वामी अनुभवानन्द जी आर्य संन्यासी को जलियाँवाला हत्याकाण्ड में फांसी का दण्ड सुनाया गया। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने संगीनों से सीना अड़ाकर शूरता का चमत्कार दिखाया, स्वतन्त्रानन्द स्वामी जी ने सिर पर कुल्हाड़े के वार सहकर इतिहास रचा। श्याम भाई ने कारागार में विषपान किया और क्रान्तिवीर नरेन्द्र को पिंजरे में बन्दी बनाया गया। **परहित जीने-मरने का पाठ आर्यों ने ऋषि का अनुसरण करके सीखा। प्रभात फेरियों में आर्य गाया करते थे—**

पराई आग में जलना मरीज़ों की दवा होना।
कोई सीखे दयानन्द से धर्म पर जाँ फ़िदा[१] करना॥

अपने जीवन में धर्म को उतारा—महर्षि दयानन्द ने धर्म को कर्म का रूप दिया। दूसरे शब्दों में धर्म को जीवन में उतारा। ईश्वर आत्मबल का देनेवाला है यह कहने वाले तो बहुत हैं। ऋषि जीवन की उपर्युक्त दोनों घटनाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि आपने पग-पग पर आत्मबल का परिचय दिया। उनके शिष्यों पं० लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा नारायण स्वामी जी ने अपने आचार्य से यह गुण ग्रहण कर नया इतिहास रचा। कलकत्ता विश्वविद्यालय के एक पूर्व उपकुलपति प्रख्यात इतिहासकार सर यदुनाथ सरकार ने ऋषि को श्रद्धाञ्जलि भेंट करते हुए लिखा था—"The faith that is without work is dead" फिर आगे लिखा—"That test, the church of Dayanand has passed most triumphantly."[२] अर्थात् व्यवहार विहीन—आचरण रहित धर्म तो मृत है। ऋषि दयानन्द द्वारा स्थापित समाज ने यह परीक्षा तो विजयपूर्वक—प्रफुल्लतापूर्वक उत्तीर्ण कर ली है।

---

१. वार देना।

२. द्रष्टव्य, Dayanand Commemoration Volume, P. 9.

आपने इतिहास का यह सूक्ष्म सत्य बड़े सुन्दर सरल शब्दों में संसार के सामने रखा है कि स्वामी दयानन्द की देन या उपलब्धि का यह कितना बड़ा प्रमाण है कि "Today Hinduism calls upon it as its best ally. Today Hinduism has paid the Arya Samaj the highest tribute, that of imitation by stealing its programme."[१] अर्थात् आज हिन्दू मत अपने आपको आर्यसमाज का सर्वोत्तम सहयोगी कहता है। आज हिन्दूमत ने आर्यसमाज के कार्यक्रम व मान्यताओं का अनुकरण करके इसके कार्यक्रम को चुराकर इसे सबसे उत्तम श्रद्धा पुष्प अर्पित किया है। और यह है भी सत्य।

आज अस्पृश्यता का समर्थन करने का साहस किसे है? आज बालविवाह, अनमेल विवाह का पोषक और विधवा विवाह का विरोधी कौन है? मूर्ति में भगवान् है यह तो कहते हैं, मूर्त्ति भगवान् है, यह सिद्ध करने वाला कौन है? सागर पार जाना पाप नहीं रहा। यह उसी ऋषि का प्रताप है। संसार में एक वर्ग ऐसा था जो यह कहता था कि परमात्मा नहीं है, केवल प्रकृति है। दूसरा वर्ग कहता था कि जीव व प्रकृति तो हैं, परन्तु परमात्मा नहीं है। कुछ कहते थे कि केवल परमात्मा (अल्लाह—God) था उसने अपनी शक्ति से जीव व प्रकृति को उत्पन्न किया। मायावादी हिन्दू कहते चले आ रहे थे कि सब कुछ ब्रह्म ही ब्रह्म है शेष जो कुछ दिखाई देता है वह भ्रम है। जगत् मिथ्या है। यह सब स्वप्नवत् कुछ भी नहीं।

स्वप्न तो सोने वालों को आते हैं। सोने वाले संसार का क्या भला कर सकते हैं? आक्रमणकारियों से देश की रक्षा स्वप्न लेने वाले, सोने वाले क्या करेंगे? जब जगत् ही मिथ्या है तो इसके विकास, उन्नति व सुधार का प्रश्न ही कहाँ उठता है? जो सब ब्रह्म ही ब्रह्म है तो पाप ताप कहाँ से आ गया? ब्रह्म तो पूर्ण परमानन्द है फिर संसार में दुखियों का आर्त्तनाद क्या वास्तविकता है? जब मनुष्य की—जीव की सत्ता ही नहीं तो मानव की गरिमा (Dignity of Man), मनुष्य की समानता, स्वतन्त्रता

१. द्रष्टव्य, Dayanand Commemoration Volume, P. 10.

व भ्रातृत्व का, काम करने के अधिकार के आन्दोलन का कुछ अर्थ ही नहीं। नारी के अधिकार, मतदान का अधिकार, कंगाली को दूर करने, विश्व शान्ति की समस्याओं का समाधान करने के लिए व्याकुल होने की क्या आवश्यकता ?

महर्षि दयानन्द ने यथार्थ दर्शन दिया—"He has given us a bold philosophy of life. A philosophy of the reality of God, reality of man and the reality of the universe in which man has to live in." ऋषि ने हमें वीरोचित दर्शन दिया। ईश्वर की वास्तविकता (सत्ता) का दर्शन दिया, उसने मनुष्य की सत्ता की सचाई तथा उस विश्व की वास्तविकता का दर्शन दिया जिसमें मनुष्य को रहना है। "His is a philosophy of bold actions and not of idle musings." उस ऋषि का दर्शन साहसिक कार्यों का दर्शन है न कि निठल्ले चिन्तन का।

संसार विचारों की लहरों पर नाचा करता है। ऋषि के इस वीरोचित दर्शन ने उसके शिष्यों को परमार्थ व पुरुषार्थ का पुतला बना दिया। उसने जीवन की कर्म करने की स्वतन्त्रता व कर्म फल सिद्धान्त के अटल नियम का रहस्य समझाकर मनुष्य को अन्धविश्वासों से, प्रमाद से, सृष्टि-नियम विरुद्ध चमत्कारों से, फलित ज्योतिष से, आलसियों के भाग्यवाद के फन्दे से मुक्त करवा दिया।

ऋषि के आगमन से पूर्व पैगम्बरों के, सन्तों के, धर्म संस्थापकों के बड़प्पन की कसौटी उनके सृष्टि-नियम विरुद्ध चमत्कार थे। ईश्वर के अटल अनादि (Eternal Laws) नियमों को तोड़कर दिखाना पैगम्बरों के बड़प्पन की कसौटी थी। ऋषि दयानन्द ने युग को पलटकर रख दिया कि ऋषियों, मुनियों व महापुरुषों के बड़प्पन की कसौटी ईश्वर के सृष्टि नियमों के पालन से है। यह एक बहुत बड़ी वैचारिक क्रान्ति थी। **ऋषि की एक मौलिक देन आत्मा और परमात्मा का सीधा सम्बन्ध है।** आपने घोषणा की कि आत्मा परमात्मा का पिता पुत्र का, स्वामी सेवक का, राजा प्रजा का सम्बन्ध है। **भक्त व भगवान् के मध्य कोई पैगम्बर, दूत, पूत व बिचौलिया नहीं है। ईश्वर से हमारा सीधा सम्बन्ध है।**

यदि चमत्कार सम्भव हैं तो फिर वह चमत्कार कैसे ? और यदि सृष्टि नियम तोड़ना असम्भव है तो फिर चमत्कार हो ही नहीं सकते। महर्षि की यह बहुत बड़ी देन है कि उसने सब मत पन्थों का भला किया। उसके ज्ञान अञ्जन से सबकी आँखें खुलीं। किसका कल्याण नहीं किया ? सर्वाधिक लाभ इस्लाम को पहुँचा। ऋषि के सत्संग से लाभान्वित सर सैयद अहमद ख़ाँ जी ने अपनी कुरान की तफ़सीर में मुसलमानों में प्रचलित चमत्कारों को मिथ्या घोषित कर झुठलाया है।[१] उनकी जीवनी 'हयाते जावेद' में भी लिखा है कि कुरान में पैगम्बर के किसी चमत्कार का उल्लेख नहीं। ऐसा ही डॉ० गुलाम जेलानी मानते हैं।[२] **इस्लाम के इस वैदिक रूप का हम स्वागत अभिनन्दन करते हैं। ईसाइयों में भी अब चमत्कारों को झुठलाया जा रहा है।**

जब ईश्वर की सृष्टि में विज्ञान का एक भी अनादि नियम (Eternal Law) निरस्त नहीं हुआ, घटा नहीं, बढ़ा नहीं और बदला नहीं तो फिर **प्रभु प्रदत्त वेदज्ञान के पश्चात् नये ज्ञान का इलहाम का आना कैसे माना जावे ?**

श्री स्वामी जी महाराज की एक ऐतिहासिक चिट्ठी—

"श्री गोपालरावहरि देशमुख

महादेव गोविन्द रानडे

आप देश के परम हितैषी हैं। हिन्दी जैसे सब देश पर दृष्टि रखते हैं। विशेष कृपादृष्टि कच्छ भुज पर भी कीजिये।

जिसे यथोचित सुशिक्षा हो, सत्य-सत्य करेंगे यह भी आशा है क्योंकि इस समय रावसाहब नाबालिग हैं।

जो मैं कहीं इस समय आता तो आप सब मिलते। परन्तु फिर मुझको यह विदित न था यहाँ व्याख्यान (होते हैं) और भी कुछ काम है। [अत:]

---

१. द्रष्टव्य, 'तफ़सीर उलकुरान' जिल्द पञ्चम, पृष्ठ २३-२४, २७-२८ इत्यादि।

२. द्रष्टव्य, 'दो इस्लाम' लेखक डॉ० गुलाम जेलानी, पृ० ३३६, तथा 'दो कुरान' पृष्ठ ३२।

कैसे आ सकता हूँ। जो मैं राजपूताना की ओर आया और समय देखा जब आना होगा। आपको सूचना हो जावेगी। मैं जदीद (नवीन) स्थान पर जाऊँ तो ठीक है उस अहाता का भी याद करोगे।''[१]

उपर्युक्त दोनों महानुभावों को अंग्रेज़ सरकार बड़ा मान देती थी। भुज कच्छ के राजा प्रागमल का उत्तराधिकारी खेंगार जी मात्र १३-१४ वर्ष का था। ऋषि को वहाँ अंग्रेजों द्वारा किसी अनर्थ की आशंका थी। भुज कच्छ गुजरात की सरल, दीन, दरिद्र प्रजा के नये शासक की बहुत छोटी आयु के कारण उत्पीड़न, शोषण व अहित की आशंका से महर्षि का हृदय तड़प उठा। अंग्रेज़ों ने महाराजा रणजीतसिंह के पुत्र की छोटी आयु का लाभ उठाकर उसे ईसाई बना लिया था। अंग्रेज़ रैज़ीडेण्ट देशी राज्य की प्रजा के विरुद्ध अनिष्टकारी करतूतें करते ही रहते थे।

भारत के किसी भी तत्कालीन नेता, सुधारक व विद्वान् का इस प्रकार का कोई पत्र व वक्तव्य नहीं मिलता। देश बन्धुओं की पीड़ा को अनुभव करके आकुल व्याकुल होने वाले ऋषि का इतिहास में एक अद्वितीय स्थान है।

सबसे बड़ा चमत्कार—ईश्वर की रचना—यह ब्रह्माण्ड सबसे बड़ा चमत्कार है। वेद ऋचाओं में ईश्वर की रचनाओं को ही जीवों की सृजनशक्ति के लिए एक उदाहरण अथवा प्रेरणास्रोत माना गया है। यह सिद्धान्त ऋषि दयानन्द ने प्रस्तुत किया। मनुष्य ने पक्षी को देखकर वायुयान, मीन को देखकर जलयान बनाये। नदियों को देखा तो नहरें निकाली गईं। अब चमत्कारों को कभी पैगम्बर व इस्लाम की महत्ता व विशेषता मानने वाले मुसलमान विद्वान् भी ऋषि की इस सीख को स्वीकार करते हैं।

डॉ० गुलाम जेलानी लिखते हैं—**''अल्लाह का सबसे बड़ा चमत्कार यह सृष्टि है।''[२]**

दया व न्याय—पाप क्षमा करने की और नबियों गुरुओं की कृपा

१. द्रष्टव्य, 'ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन', संस्करण दूसरा, पृष्ठ २७४।

२. द्रष्टव्य, 'दो कुरान' पृष्ठ ३२२

व सिफ़ारिश से मुक्ति की गारण्टी देने वाले मत पंथ न्याय व दया को पर्याय मानने लगे हैं। यह स्वामी दयानन्द की महान् देन व उपलब्धि है। **''वह प्रभु न्यायकारी और दयालु है। एक मुर्दे को क्या पता कि न्याय व दया के प्रयोजन क्या हैं ?''[१]**

प्रार्थना को ईश्वर स्वीकार अस्वीकार करता है न कि मुर्दे— ''आपने कबर की झण्डी हिलाई और मन्नत पूरी होने के लिए ईश्वर के भवनों में भूकम्प आ गया''—ऐसा नहीं होता।[२]

यह वैचारिक क्रान्ति ऋषि के पुण्य प्रताप से आई।

जो कल तक वेदों से जल, अग्नि, वायु, पेड़, पक्षी, पशु व अनेक देवी-देवताओं की पूजा का ढोल पीटते थे अब मानते हैं कि ''वेदों में कहीं मूर्त्तिपूजा का वर्णन नहीं।''[३]

''वेद में आदि से अन्त तक केवल एक ईश्वर की उपासना का आदेश है।''[४]

सिर ऊँचा उठाने योग्य कर दिया

ऋषि दयानन्द ने सच्चा वेदभाष्य करके वेद के मानने वालों को सिर उठा कर चलने व वैदिक धर्म पर गौरव करने योग्य बना दिया।

ईश्वर पूर्ण है—परमात्मा पूर्ण है। उसका प्रत्येक कार्य पूर्ण व निर्दोष है। प्रभु ने सृष्टि के आदि में जो सूर्य बनाया, जो चन्द्र बनाया वही सूर्य चन्द्र पूर्ववत् जीवों को लाभान्वित कर रहे हैं। न तो नया सूर्य बनाना पड़ा और न नया चाँद ही बनाने की आवश्यकता पड़ी। अग्नि, जल और वायु के भी वही नियम हैं। पशु, पक्षी, जलचर व मनुष्य भी वैसे ही उत्पन्न होते हैं। नये प्रकार (Design) के वस्त्र, मेज़, कुर्सी व टी०वी० आदि की तो बाज़ार में मांग रहती है, परन्तु नये प्रकार का (नमूने का) पुत्र या नये नमूने (Design) की पुत्री कोई नहीं माँगता फिर आत्मोन्नति व विश्व कल्याण के लिए नये

१-२. द्रष्टव्य, 'एक इस्लाम' लेखक डॉ० बर्क, पृष्ठ २३८

३-४. द्रष्टव्य, 'एक इस्लाम' पृष्ठ १७४

ईश्वरीय ज्ञान, नये मत पन्थ की मान्यता कैसे तर्कसंगत या बुद्धि संगत हो सकती है? यह सिद्धान्त मनुष्य को ऋषि ने हृदयङ्गम करवा दिया है। अपने हठ, दुराग्रह व स्वार्थ सिद्धि के लिए भले ही इसे कोई खुलकर स्वीकार न करे।

ऋषि के ग्रन्थों में, शास्त्रार्थों में तथा व्याख्यानों में बार-बार मानव को यह सीख दी गई कि ईश्वर के गुण, कर्म व स्वभाव के विपरीत कुछ भी मान्य नहीं। वैज्ञानिक सोच यही सिद्ध करती है। अब पहली बार ऋषि की इस मान्यता को मुसलमानों में खुलकर स्वीकार किया गया है। डॉ० गुलाम जेलानी ने '**अल्लाह की आदत**' नाम से एक पठनीय पुस्तक लिख दी है। आपने अल्लाह के गुण, कर्म व स्वभाव को नित्य व अनादि माना है। **कहिये युग पलट कर रख दिया या नहीं?**

निर्भीक सत्यवाणी

अंग्रेज़ी राज आया। 'अंग्रेज़ी राज की बरकतें' (Blessings) यह पाठ स्कूलों, कॉलेजों में पढ़ाया जाता था। गांधी जी भी प्रथम विश्व **युद्ध तक अंग्रेज़ जाति के न्याय, न्यायपालिका की भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते थे।** ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के तेहरवें समुल्लास में अंग्रेज़ी न्यायपालिका की निष्पक्षता व न्याय की धज्जियाँ उड़ाकर रख दीं।[१] इस निर्भीकता का दूसरा उदाहरण कोई भी प्रस्तुत नहीं कर सकता।

महर्षि सन् १८७७ में जालन्धर पधारे तब आपने एक दिन कहा—**"आजकल के राजा न्याय नहीं प्रत्युत अन्याय करते हैं। अंग्रेज़ लोग अपने मनुष्यों पर अत्यधिक कृपादृष्टि रखते हैं। यदि कोई गोरा अथवा अंग्रेज़ किसी देशी की हत्या कर दे तथा वह (हत्यारा) न्यायालय में कह दे कि मैंने मद्यपान कर रखा था तो उसको छोड़ देते हैं।"**[२]

वीरों की छातियों को गर्मा दिया—ऋषि का जालन्धर का यह भाषण आधुनिक भारत के इतिहास में एक बेजोड़ घटना है। दुर्भाग्य कहें,

१. द्रष्टव्य 'सत्यार्थप्रकाश' त्रयोदश समुल्लास : समीक्षा ८०
२. द्रष्टव्य 'महर्षि दयानन्द सरस्वती : सम्पूर्ण जीवन चरित्र' भाग-२, पृष्ठ ७३

भीरुता कहें अथवा पक्षपात समझें कि इतिहास लेखकों ने खुलकर महर्षि की इस निर्भीक सत्यवाणी की, इस जनकल्याणी घोषणा की इतिहास पुस्तकों में कहीं भी चर्चा नहीं की। ऋषि के जीवनी लेखकों में भी पं० लेखराम जी व लक्ष्मण जी ही इसे देने का साहस बटोर सके और अंग्रेज़ का राज चला गया फिर भी नये-नये ग्रन्थ जो ऋषि पर रचे गये—उनमें भी इस घटना का लोप है। **कोई इसे झुठला भी तो नहीं सका। झुठलाने की हिम्मत किस में है? राजा राममोहनराय से लेकर स्वामी विवेकानन्द तक कोई भी सुधारक, विचारक, महात्मा इस निर्भीकता से देश के दुखड़े पर अश्रुपात न कर सका। ऋषि ने ऐसी घोषणा करके बिस्मिल, रोशन, अशफ़ाक, भगतसिंह और सुभाष जैसे प्राणवीरों की छातियों को गर्मा दिया।**

अखिल विश्व ने यह मान लिया है

ऋषि दयानन्द की देन को समझने के लिए पाठक यह ध्यान दें कि पूरे विश्व में यह प्रचार होता रहा है कि अल्लाह ने कहा 'कुन' (हो जा) तो सब कुछ हो गया। यह जगत् बन गया। परमात्मा ने चाहा तो प्रकृति उत्पन्न हो गई। पहले दिन यह बना, दूसरे और तीसरे दिन यह बना। छह दिन में सृष्टि बन गई और सातवें दिन ईश्वर ने विश्राम किया। **सात दिन में तो टमाटर, मेथी, प्याज़, मिर्ची, गोभी, पालक आदि भी नहीं उगते। मानवीय माता की कोख में शिशु का शरीर बनने में नौ मास लग जाते हैं।** पत्थर, हीरे, कोयले को धरती में बनते-बनते लाखों वर्ष लग जाते हैं। सृष्टि का सृजन सात दिन में हो गया—यह कितना हास्यास्पद कथन है! आज पूरा विश्व मानता है—'Matter can neither be created nor it can be destroyed.' अर्थात् प्रकृति न तो उत्पन्न की जा सकती है और न ही नष्ट की जा सकती है। यह अनादि है, नित्य है। ज्ञानशून्य जड़ प्रकृति जब उत्पन्न नहीं की जा सकती तो जीव की उत्पत्ति मानना क्या युक्तियुक्त है? **जहाँ क्रिया है, गति है वहाँ कर्त्ता व गतिदाता का होना भी मानना पड़ता है।** जगत् के कण-कण में गति हो रही है। सूर्य, चन्द्र, ग्रह, उपग्रह गति कर रहे हैं। इनको गति देने वाले सर्वशक्तिमान्

की अनादि सत्ता को भी मानना पड़ता है। महर्षि दयानन्द ने जो किया व जो दिया वह सबके सामने हैं और सबको मान्य हो रहा है।

इतिहासकार श्री काशीप्रसाद जयसवाल की ये पंक्तियाँ इतिहास का निचोड़ है—"In nineteenth century there was nowhere else such a poweful teacher of monotheism, such a preacher of the unity of man, such a successful crusader against capitalism in spirituality."[१]

अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी में धराधाम पर एकेश्वरवाद का ऐसा महाप्रतापी सन्देशवाहक गुरु कोई नहीं हुआ, मानवीय एकता का ऐसा प्रचारक तथा आध्यात्मक जगत् में पूंजीवाद के विरुद्ध लड़ने वाला कोई ऐसा धर्मयोद्धा नहीं हुआ (जैसा कि स्वामी दयानन्द था)।

—o—

जुग बीत गया दीन की शमशीर ज़नी[२] का।
है वक्त दयानन्द शजाअत[३] के धनी का॥

—पं० चमूपति

१. द्रष्टव्य, Dayanand commemoration Volume 1933 A.D. page 163.

२. तलवार से हिंसा से प्रचार।

३. शूरता, वीरता।

दिग्विजयी ऋषि दयानन्द

चांदापुर में पादरी ने विद्वत्ता का लोहा माना

उत्तरप्रदेश के शाहजहाँपुर जनपद के कस्बा चाँदापुर में १९-२० मार्च सन् १८७७ को ऋषि दयानन्द जी का पादरियों व मौलवियों से एक ऐतिहासिक शास्त्रार्थ हुआ था। यह शास्त्रार्थ वहाँ के एक प्रतिष्ठित कबीरपन्थी मुंशी प्यारेलाल ने बहुत धनराशि व्यय करके आयोजित किया था। वहाँ कई ईसाई, मुसलमान, पादरी व मौलवी मेले पर प्रचार करने आते थे। हिन्दुओं के धर्मच्युत होने का भय था। इसलिए मुंशीजी ने किसी की प्रेरणा से मुंशी इन्द्रमणि तथा स्वामी दयानन्द जी महाराज को आमन्त्रित करके 'सत्यधर्म-विचार' मेला चांदापुर में शास्त्रार्थ की व्यवस्था की। शास्त्रार्थ पाँच दिन तक होना था, परन्तु दो दिन के पश्चात् पादरी व मौलवी बिना सूचना दिये चले गये।

हिन्दुओं ने पहली बार देखा

परकीय मतों से किसी आर्यधर्म के विद्वान् मुनि महात्मा का यह पहला ऐतिहासिक शास्त्रार्थ था। राधास्वामी मत के तीसरे गुरु श्री हजूरजी महाराज ने ऋषि दयानन्द की जीवनी में लिखा है कि हिन्दुओं ने पहली बार विधर्मी विद्वानों—पादरियों व मौलवियों को शास्त्रार्थ समर में एक आर्य संन्यासी के सामने भागते देखा। विस्तार के लिए पाठक इस शास्त्रार्थ को पढ़ें।

२० मार्च की पहली सभा में पादरी जी ने मौलवियों को कहा—**"सुनो भाई मौलवी साहबो! कि पण्डित जी इसका उत्तर हज़ार प्रकार से दे सकते हैं। हम और तुम हज़ारों मिलकर भी उनसे बात करें तो भी पण्डित जी के बराबर उत्तर नहीं दे सकते हैं। इसलिए इस विषय में अधिक कहना उचित नहीं।"**[१]

---

१. द्रष्टव्य, 'महर्षि दयानन्द सरस्वती : सम्पूर्ण जीवन चरित्र' पृष्ठ ५०३

पादरी स्काट का तीखा कटाक्ष और ऋषि की उदारता, सहनशीलता

चाँदापुर के शास्त्रार्थ में एक महत्त्वपूर्ण घटना की ओर इतिहासकारों ने समुचित ध्यान नहीं दिया। वहाँ पादरी स्काट ने शास्त्रार्थ की अन्तिम सभा में यह कहा—"**मैं एक उदाहरण देता हूँ कि जैसे पण्डित जी बलवान् हैं, ऐसे ही इंगलिस्तान में एक मोटा ताज़ा मनुष्य था, परन्तु वह शराब पीता था और चोरी तथा व्यभिचार भी करता था, परन्तु जब ईसा मसीह पर विश्वास लाया तब सब बुराइयों से छूट गया।**"[१]

जब ऋषि दयानन्द की उत्तर देने की बारी आई तो आप अत्यन्त शान्ति से पादरी व मौलवी साहब का उत्तर देते हुए पादरी स्काट के इस अनुचित कटाक्ष की उपेक्षा करके अपने विचार व्यक्त करते गये। अन्त में पादरी जी के कथन के उत्तर की समाप्ति पर अत्यन्त सहजभाव से इस विषय में केवल इतना ही कहा—"**श्री पादरी साहब ने जो इंगलिस्तान के दुष्ट मनुष्य का दृष्टान्त मेरे साथ मिलाकर दिया सो उनकी यह वर्णन शैली उनके योग्य न थी पर न जाने किस प्रकार से उनके मुख से यह बात भूल से निकली।**"[२]

सहृदय पाठक महर्षि के इस कथन पर गम्भीरता से विचार करेंगे तो उनका हृदय यह साक्षी देगा कि ऋषि जी के हृदय की विशालता व सहनशीलता का उदाहरण मिलना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। मानव मात्र इस प्रेरक प्रसंग से नैतिक ऊर्जा प्राप्त कर सकते हैं।

जब गोरा पादरी कुक सागर पार भाग गया

महर्षि की अन्तिम मुम्बई यात्रा के समय विदेश से एक गोरा पादरी जोसेफ़ कुक वहाँ पहुँचा। इसके आगमन की पूरे भारत में चर्चा फैल गई। पादरी ने १७ जनवरी सन् १८८१ के दिन मुम्बई टाऊन हाल में धाराप्रवाह अंग्रेज़ी में एक प्रभावशाली व्याख्यान में यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि ईसाई मत ही विश्वभर में एक सच्चा धर्म है। इसका

१-२. द्रष्टव्य, 'महर्षि दयानन्द सरस्वती : सम्पूर्ण जीवन चरित्र' पृष्ठ ५०५, ५०९

आविर्भाव ईश्वर से हुआ। और यही मत निकट भविष्य में पूरे विश्व में फैलेगा। अंग्रेज़ी पठित लोगों पर पादरी की विद्वत्ता का गहरा प्रभाव था।

किसी साधु, सन्त, महात्मा और संस्था में पादरी को उत्तर देने की हिम्मत न हुई। वह सारे भारत को ईसाई बनाने की घोषणा कर रहा था। ऋषि दयानन्द ने १८ जनवरी को पादरी को अंग्रेज़ी में एक पत्र लिखवा कर भेजा। इसमें 'Which religion is of divine origin' अर्थात् कौनसा धर्म ईश्वरकृत है—इस विषय पर शास्त्रार्थ करने की चुनौती दी। पादरी तो बीस जनवरी को ही पूना भाग गया। शास्त्रार्थ करने की चुनौती पाते ही उसका सांस फूल गया। पूना से वह सात समुद्र पार पश्चिम में भाग गया।[१]

अंग्रेज़ों के शासनकाल में इतने बड़े पादरी को सागर पार भगाने वाला महापुरुष केवल यतिराट् दयानन्द स्वामी ही हुआ है। हिन्दू समाज ने कृतज्ञता का प्रकाश करते हुए महर्षि के जीवन की इस घटना की कभी चर्चा ही नहीं की।

गत सत्तर वर्षों में महर्षि के कई जीवन-चरित्र छपे हैं, परन्तु किसी भी विद्वान् लेखक ने इस गौरवपूर्ण घटना का उल्लेख नहीं किया। एक दो पुस्तकों में कुक के मुम्बई आगमन का संकेत तो मिलता है।

लपलपाती तलवारें म्यान से निकलीं

राधास्वामी मत आगरा के तीसरे गुरु श्री हज़ूर जी महाराज ने महर्षि दयानन्द के चरित्र का मूल्यांकन करते हुए लिखा है—

"स्वामी दयानन्द अत्यधिक निर्भीक व्यक्ति थे। उनके एक-दो शत्रु नहीं थे। उनकी संख्या सहस्त्रों तक थी, परन्तु उन्हें किसी से भी भय नहीं हुआ। अकेले ही बनों में, निर्जन मैदानों में और डरावने पर्वतों में विचरण करते रहे। संकटों का, त्रास का सामना किया। विपत्तियों को झेला। न कभी डोले, न झिझके। सदैव अपनी कामना

१. ऋषि का पत्रव्यवहार तथा 'महर्षि दयानन्द सरस्वती : सम्पूर्ण जीवन चरित्र' पृष्ठ ५५७-५५८

के सोपान की कल्पना में निर्भयता पूर्वक अत्यन्त सक्रियता से तराई में नर नाहर के समान गर्जना करते रहे।

आक्रमण किये गये, मार पड़ी, ईंट पत्थर की वर्षा तो सर्वथा साधारण घटनाएँ थीं। लोगों ने कीचड़ फैंका। नदी जल में धकेले गये। कई बार विष दिया गया। धमकियाँ मिलती रहीं। लपलपाती हुई तलवारें म्यान से निकलीं परन्तु यह एक से भी भयभीत न हुए। न उनसे आतंकित हुए और न ही उनका इन पर किञ्चित् प्रभाव पड़ा।

उनमें अद्भुत संकल्प शक्ति थी। उनके लौह धीरज तथा अडिग दृढ़ता का उदाहरण गत चार-पांच शताब्दियों में तो किसी में भी कहीं मिलता नहीं। शूरवीर योद्धा सेना को साथ लेते हैं। दुर्गों में शरण लेते हैं। अस्त्र शस्त्र उनके सहायक होते हैं। यहाँ क्या था ? कुछ भी नहीं। केवल निडरता तथा असीम हार्दिक शक्ति साथ थी।

एक व्यक्ति निर्भय होकर सहस्त्रों के साथ, लाखों के साथ टकराया यह उदाहरण इधर स्वामी दयानन्द जी ने ही स्थापित किया है। खोजकर तो देखिये। क्या इस गुण से विभूषित कोई मनुष्य यहाँ दिखाई देता है ?.....कहाँ यहाँ एक ऐसा निर्भीक, शूर, साहसी, वीर ब्राह्मण रण में उतरता है जिसका मुखमण्डल देखकर सहस्त्रों के छक्के छूट जाते हैं और वह किसी से नहीं घबराता। हम उसे क्या कहें ? मनुष्य था अथवा ईश्वरीय सृष्टि की अद्भुत रचना था।''[१]

सब जानते हैं कि राधास्वामी मत वाले खण्डन करते भी आये हैं, परन्तु खण्डन करने को बहुत बुरा भी मानते हैं। श्री शिवव्रतलाल वर्मन (हजूर जी महाराज) ने ऋषि की आलोचना भी जमकर की है, परन्तु उनके हृदय पर स्वामी जी महाराज की अमिट छाप भी थी। श्री शिवव्रतलाल जी अपने समय के एक लोकप्रिय सिद्धहस्त लेखक थे। उनकी इन पंक्तियों पर और कुछ टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है।

---

१. द्रष्टव्य, 'स्वामी दयानन्द सरस्वती' उर्दू पुस्तक, लेखक श्री शिवव्रतलाल वर्मन, पृष्ठ २७७-२७८

मृदुल आचार-व्यवहार से विरोधी जीते

सार्वजनिक जीवन में ऋषि दयानन्द के असंख्य विरोधी थे। वे अकेले मैदान में उतरे। उनके संग और कौन था? एक ईश्वर और उनका सद्ज्ञान वेद और बस!

था कुल जगत् विरोधी तिस पर ऋषि दयानन्द,
वैदिक धर्म ध्वजा को फहरा गया अकेला॥ कविरत्न 'प्रकाश'

इसे हम ईश्वर की कृपा कहें अथवा महर्षि के निर्मल जीवन, मृदुल व्यवहार तथा पवित्र चरित्र का चमत्कार कि उनके बड़े-बड़े विरोधी भी अपने जीवन की अन्तिम वेला में उनका यशोगान करते गये।

काशी शास्त्रार्थ से भी कोई पाँच मास पूर्व मेरठ के पं० श्रीगोपाल शास्त्री को फ़र्रुखाबाद में उनसे शास्त्रार्थ करने के लिए बुलवाया गया। शास्त्रार्थ तो न हो पाया, परन्तु शास्त्री जी ने विरोध करने में कोई कमी न छोड़ी। इन्हीं शास्त्री जी ने सन् १८७९ में अपने त्रिभाषी ग्रन्थ वेदार्थप्रकाश में एक फ़ारसी कविता दे कर ऋषि दयानन्द के पवित्र चरित्र, विद्वत्ता, वाणी के प्रभाव की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उन्हें जहाँ **'नेको सीर'** (पवित्र स्वभाव—आचरण वाला) लिखा है वहाँ—**'दर मुकाबिल ऊ कसे बाज़ी नबुर्द'** अर्थात् शास्त्रार्थ में उसके सामने कोई भी टिक न सका।

ऋषि के विरोधियों के एक प्रमुख सेनापति 'जय जगदीश हरे' आरती के रचयिता पं० श्रद्धाराम जी फिलौरी थे। आपने ऋषि दयानन्द के विरुद्ध क्या-क्या लिखा व कहा, इसकी चर्चा करने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। अन्तिम वेला में ऋषि के नाम आपके हाथ से लिखा ऐतिहासिक पत्र परोपकारिणी सभा के संग्रह में सुरक्षित पड़ा है। उसमें आप लिखते हैं—**''मैं दश वर्ष से आपके विद्वत्व सौहार्द सौजन्य सारल्यादि सद्गुणों को सुन सुनकर परम आह्लादित होता और दर्शन को तरसता था।''** इसी पत्र में लिखा है—**''निकट था कि फुलौर से चलके लुदेहाने (लुधियाना) में आपसे मिलता व एक दो दिन फुलौर में विराजने की विज्ञप्ति करता''** ये वाक्य बहुत कुछ कह रहे हैं।

सन् १८७९ के कुम्भ मेला के श्रद्धाराम जी के एक साथी पं० गोपाल शास्त्री जम्मू भी ऋषि के एक मुख्य विरोधी थे। आपने लाहौर के विद्याप्रकाशक पत्र में '**पं० श्रद्धाराम की बनावट**' शीर्षक से लिखा—"मुझे हरिद्वार में अत्यन्त लज्जा व ईश्वर का भय प्रतीत होता था जब पं० श्रद्धाराम के साथ मिलकर अनुचित कार्यवाहियाँ करते थे......पं० श्रद्धाराम ने धोखाधड़ी का एक बड़ा काम किया........जिन साधों व ब्राह्मणों ने झूठे वक्तव्य दिये वे स्वामी जी के पास कभी गये ही नहीं थे। वे साधु भी बनावटी थे।"[१]

पं० भानुदत्त जी भी बदल गये—लाहौर के संस्कृत के विद्वान् पं० भानुदत्त पर पं० श्रद्धाराम आदि ने दबाव डालकर उन्हें ऋषि के विरोध में अपनी टोली में खींचा, परन्तु वह भी बदल गये। आपने ऋषि के मिशन व आर्यसमाज की सेवाओं यथा अनाथ रक्षा व कन्या शिक्षा की दिल खोलकर प्रशंसा की।[२]

'जन्मे टंकारा अन्दर स्वामी जयकार तेरा।'

लोकोपकार—वेद-प्रचार के उद्‌गार

महर्षि दयानन्द के जीवन की एक-एक घटना तथा उनकी सतत साधना उनके अटल और अडिग ईश्वर विश्वास का परिचय देती है। उनके लिए ईश्वर की वाणी वेद का प्रचार तथा लोकोपकार ही उनका सर्वस्व था। वे किसी तात्कालिक लाभ के लिए अपने सिद्धान्तों का—मान्यताओं का समझौता करने को तैयार नहीं थे। साधु टी० एल० वासवानी ने लिखा है—"He cannot barter convenience for conviction."[३] अर्थात् स्वामी दयानन्द तात्कालिक लाभ के लिए सिद्धान्तों की अदला-बदली अथवा सौदा नहीं कर सकते थे। उनके उर में लोकोपकार, सद्ज्ञान वेद के प्रसार और अन्धकार का नाश करने के

१. द्रष्टव्य, 'विद्याप्रकाशक' उर्दू लाहौर का जून १८७९ का अंक, पृष्ठ ४६-४७
२. द्रष्टव्य, आर्य अनाथालय फीरोज़पुर की सन् १८८५ की रिपोर्ट, पृष्ठ १६
३. Torch Bearer by T. L. Vaswani, First Edition, page 128

लिए अदम्य उत्साह था। उनके हृदय में अपने इस मिशन के लिए अरमानों का तूफ़ान था। जन कल्याण व मानव निर्माण के लिये उनके मन में सर्वस्व वार देने के लिए अंगार धधक रहे थे। उनके अपने शब्दों में उनके मनोभाव यहाँ देते हैं।

"मुझको इतना बड़ा परिश्रम निन्दा अपमान उठाकर कौन सा स्वप्रयोजन सिद्ध करना चाहता हूँ। यदि तुम लोग जैसा कि अब उदासीनता की बातें लिखी हैं लिखोगे वा करोगे तो सब संसार की हानि का अपराध तुम्हारे पर होगा। और मैंने जो उपकार करना निश्चित किया है जहाँ तक बन सकेगा आमरण तक करूँहीगा पुनर्जन्मान्तर में भी।"[१]

चरित्र-दर्पण

थोड़े से असत्य से सम्पूर्ण निर्दोष कृत्य बिगड़ जाता है

महर्षि जब सन् १८८३ में शाहपुरा पधारे तो आपको वहाँ एक नवीन वेदान्ती साधु अमृतराम का एक महत्त्वपूर्ण पत्र प्राप्त हुआ। उसने अपने पत्र में श्री गोपालराव शर्मा जी लिखित ऋषि की जीवनी में चित्तौड़ की घटनाओं का वर्णन करते हुए एक निराधार बात के बारे लिखा कि महाराणा सज्जनसिंह दिन में दो बार ऋषि की सेवा में उपस्थित होते थे। लाट साहब के आने के कारण महाराणा जी को तब इतना अवकाश ही कहाँ था?

इस असत्य कथन पर साधु ने बड़ी आपत्ति की। स्वामी जी ने तुरन्त साधु जी के पत्र का उत्तर देकर उन्हें शान्त किया और एक पत्र पं० गोपालरावहरि जी को भी लिखा गया। महर्षि ने शर्मा जी को लिखा—"न जाने कहाँ से क्या सुन सुना कर लिख दिया। उस काल उस स्थान में मेरा उदयपुराधीश से केवल तीन ही बार समागम हुआ।"

फिर आगे ये मार्मिक शब्द लिखे—**"जब आपको मेरा इतिहास ठीक-ठीक विदित नहीं, तो उसको लिखने में कभी साहस मत करो।**

---

१. द्रष्टव्य, मुंशी समर्थदान के नाम पत्र, ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ ३९५ संस्करण दूसरा।

क्योंकि थोड़ा सा भी असत्य हो जाने से सम्पूर्ण निर्दोष कृत्य बिगड़ जाता है। ऐसा निश्चय रक्खो। और इस पत्र का शीघ्र उत्तर भेजो।''

ऋषि दयानन्द के चरित्र की निर्मलता और सत्यनिष्ठा का इससे बड़ा प्रेरक प्रसंग क्या हो सकता है?

स्त्री जाति का सम्मान और संन्यास मर्यादा

महर्षि दयानन्द जी की उत्कट इच्छा थी कि कोई विदुषी देवी ब्रह्मचर्य का कठोर व्रत धारण करके स्त्री जाति का सुधार उपकार करे—''But it is a too thorny path for an ordinary traveller.'' साधारण पथिक के लिए यह अत्यन्त कण्टकाकीर्ण मार्ग है। पण्डिता रमाबाई से कुछ आशा लगाई परन्तु वह पूरी न हुई।

पंजाब की अल्प पठित माता भगवती ने अपने भाई चूनीलाल के संग सन् १८८२ में मुम्बई में आपसे उपदेश पाकर वैदिक मिशन के लिए जीवन भेंट किया। ऋषि ने आमने सामने नहीं, पीठ करके उससे बातचीत की। कभी भी एकान्त में अकेली स्त्री से बात नहीं की और न ही उनके लिये गये किसी ग्रुप फोटो में आप किसी महिला को पाएँगे।

ब्रह्मचर्य की जीवित प्रतिमा।
व्रतधारी बलवान दयानन्द॥

प्रदूषण-निवारक अभियान

आधुनिक युग में विश्व में वायु प्रदूषण को रोकने के लिए पर्यावरण शुद्धि का अभियान चलाने का श्रेय ऋषि दयानन्द को ही जाता है। वे जहाँ-जहाँ गये पेड़, पौधों की रक्षा व पुष्प तोड़ने का निषेध करते रहे। आपने अपनी वाणी से ऐसे उपदेश दिये और ग्रन्थों में भी इसके लिए प्रेरणा दी। आप सन् १८८२ के अन्तिम महीनों में उदयपुर के गुलाब सागर में ठहरे तब एक दिन कविराजा श्यामलदास जी ने नौलखा महल के गुलाब उद्यान में से सूँघने के लिए एक पुष्प तोड़ा। उस समय स्वामी जी महाराज भी आपके साथ ही थे तब आपने कविराजा श्यामलदास से कहा—''आपने यह अच्छा नहीं किया।'' श्री श्यामलदास जी ने कहा—

"मुझसे क्या पाप हो गया?"

स्वामी जी ने कहा—"और पाप तो नहीं, परन्तु यह पुष्प यदि यहीं रहता तथा इसके द्वारा यहाँ का वायु जितना शुद्ध व सुवासित होता वह अब नहीं होगा। इसकी हानि का यह दोष तो अवश्य हुआ।" इतिहासकार कविराजा ने अपनी भूल को स्वीकार किया।

कविराजा ने स्वयं पं० लेखराम जी को यह घटना सुनाई। आपने इस घटना को पद्य में ऐसा दिया है—

कविवर श्यामलदास बुध, कथित उदयपुर वास।
दयानन्द यतिराज को, किंकर करत प्रकाश॥
तोडयो नोलख बाग से, मैंने इक दिन फूल।
यतिवर तब ऐसे कही, करी बड़ी तुम भूल॥
श्यामल "क्या पातक हुआ" कहिये मुनिवर आप।
दयानन्द कुछ और ना, यही कियो तुम पाप॥
जो रहतो यहाँ फूल यह, करतो निर्मल पौन।
यही हानि अरु पाप है, और पाप है कौन॥

काशी में उनकी हत्या के षड्यन्त्र

ऋषि के एक समकालीन उनके जीवनी लेखक ने अपने ग्रन्थ में मैडम ब्लैवेट्स्की की पुस्तक के प्रमाण से लिखा है—"बनारस में गुप्त हत्यारे उनका वध करने के लिए छोड़े गये, परन्तु ये प्रयत्न विफल रहे।"[१]

मैडम ने अपनी आँखों देखी एक घटना का उल्लेख किया है। ऋषि एकेश्वरवाद पर व्याख्यान देते हुए केवल सर्वव्यापक प्रभु की उपासना पर बल देते हुए ईश्वरेतर की पूजा का खण्डन कर रहे थे तो किसी दुष्ट ने उन पर कोबरा फैंक दिया। अटल ईश्वर विश्वासी निर्भय दयानन्द ने भरी सभा में उस जीवित कोबरा को पूँछ से पकड़कर झटककर मार डाला और कहा—"लो! तुम्हारा देवता तो जब निर्णय करेगा, मैंने तो अभी

१. द्रष्टव्य, 'स्वामी दयानन्द और उनकी तालीम' पृष्ठ ३८९

निर्णय कर दिया।'' यह उनके असाधारण आत्म बल व शौर्य का एक ज्वलन्त उदाहरण है।

झटक करके क्या कोबरा मार डाला।
वह ब्रह्मचर्य महिमा दिखा देने वाला॥
वह काशी भी डोली जो डेरा था डाला।
ध्वजा ओ३म् की वह झुला देने वाला॥ 'जिज्ञासु'

एक बार कहीं टांग भी तोड़ी गई

ऋषि पर अनेक प्राणघातक वार-प्रहार किये गये। 'एक अलभ्य शास्त्रार्थ' (रसाला एक आर्य उर्दू) के सम्पादक लाला साईंदास ने उसके प्राक्कथन में एक घटना दी है कि विरोधियों ने उनके सुधार, उपकार कार्यों से चिढ़कर उनकी टाँग तोड़ दी। स्थान का नाम वहाँ नहीं दिया। सब प्रकार का वैर-विरोध व वार-प्रहार सहकर भी ऋषि कभी डोले नहीं।

वे अकम्प बैठे रहे

पं० मोतीलाल नेहरू ने 'प्रकाश' उर्दू में अपने एक लेख में लिखा था कि वह कानपुर में स्कूल में पढ़ते थे। एक दिन क्रिकेट खेलकर आ रहे थे। कानपुर के प्रसिद्ध परेड मैदान में भारी भीड़ देखकर आप भी उत्सुकतावश भीड़ में सम्मिलित हो गये। वहाँ स्वामी जी महाराज एक ईश की उपासना का मण्डन तथा मूर्त्तिपूजा का खण्डन कर रहे थे। देखते ही देखते मूर्त्तिपूजकों ने उन पर ईंटें व धूलि फैंकनी आरम्भ कर दी।

सभा उखड़ गई। मोतीलाल लिखते हैं कि मैं स्वामी जी के निकट ही उनके सामने बैठा था। प्रचण्ड विरोध में भी आप पूर्ववत् शान्त और अकम्प बैठे रहे—मानो कि उन पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं था। इतने कोलाहल में भी कुमार मोतीलाल से कहा—"तुमने कुछ पूछना हो तो पूछ लो।" श्री मोतीलाल ने कहा—"आप तो मूर्त्तिपूजा का ही खण्डन करते हो, परन्तु मैं तो पूजा मात्र का विरोध करता हूँ।"

स्वामी जी ने पूछा—"तुम क्या करते हो?"

उत्तर दिया—"पढ़ता हूँ।"

ऋषि ने पूछा क्या पढ़ते हो? मोतीलाल जी ने अपने विषय बताते हुए सबसे पहले 'अंग्रेज़ी विषय' बताया। तब मुस्कराते हुए महर्षि ने कहा—"दोष तुम्हारा नहीं। यह अंग्रेज़ी शिक्षा का दोष है।"[१] यह घटना सन् १८७३ की है।

अमृतसर में ईंटों की वर्षा

महर्षि एक से अधिक बार अमृतसर आये। सन् १८७८ में भी आप यहाँ ५ मई से १५ जुलाई तक वेदज्ञान की गंगा प्रवाहित करते रहे। पौराणिक पण्डित डींगें तो बहुत मारते रहे, परन्तु शास्त्रार्थ करने का साहस किसी में नहीं था। जब ऋषि अमृतसर से प्रस्थान करने वाले थे तब पण्डितों को शास्त्रार्थ करने की सूझी। वास्तव में शास्त्रार्थ तो करने की हिम्मत किसी में थी ही नहीं। वे शास्त्रार्थ की आड़ में दंगा करना चाहते थे। आर्यसमाज ने विरोधियों की चाल को भाँप लिया। ऋषि ने तो आगे कहीं जाना ही था। अब नहीं रुकेंगे तो शोर मचाएँगे कि हम तो शास्त्रार्थ करना चाहते थे, परन्तु स्वामी जी नहीं रुके। अपनी पीठ थपथपाने का अच्छा अवसर मिलेगा।

आर्यसमाज द्वारा २८ जनू सन् १८७८ सायंकाल को सरदार भगवानसिंह के तबेला में शास्त्रार्थ में शान्ति बनाये रखने के लिए पुलिस की सेवा भी ली गई। आर्यसमाज अमृतसर की सन् १८८३-८४ की रिपोर्ट के अनुसार भीड़ पाँच छह सहस्र के लगभग होगी। छतों पर भी बहुत लोग थे।

पण्डितों की ओर से उनका वकील मोहनलाल आया। उसने कहा, पण्डित सभा में आना चाहते हैं। उनको बुलवाया जाये। दो तीन सज्जन उनको भीतर ले आये। २७ जनू को ही दरी बिछा दी गई थी। मेज़ कुर्सी भी पण्डितों के लिए आमने सामने लगा दी गईं। आते ही पण्डितों के सिखाये लोगों ने शोर मचाना आरम्भ कर दिया।

दुष्ट खुल खेले। ईंटें पत्थर फैंके जाने लगे। प्रत्येक ईंट रोड़ा स्वामी

१. द्रष्टव्य, 'महर्षि दयानन्द सरस्वती : सम्पूर्ण जीवन चरित्र' भाग-२, पृष्ठ ३४७

जी को लक्ष्य करके फैंका गया। स्वामी जी शान्ति से यह सब कुछ देख रहे थे। कुछ धर्मप्रेमी सज्जनों ने उनको चारों ओर से घेर रखा था। रोड़े प्रतिष्ठित महानुभावों को लगे। कुछ एक को रक्त बहने लगा। पुलिस भी खड़ी सब कुछ देख रही थी। अन्ततः बड़ी सावधानी व यत्न से स्थिति को सम्भाला गया।

जिन व्यक्तियों को चोटें आईं उनमें आर्यसमाज के प्रसिद्ध दार्शनिक स्वामी दर्शनानन्द जी भी एक थे। उनका नाम तब स्वामी नित्यानन्द था। वे ऋषि को सुनकर उन्हीं दिनों वैदिक धर्मी बने थे। ऋषि को ईंट-वर्षा से बचाते हुए वे घायल हुए। उनके पाँव पर अन्त समय तक उस समय की चोट का निशान बना रहा। महर्षि ने जीवन भर कभी भी कहीं भी भीड़ के इस आक्रमण की—ईंट वर्षा की लिखित वा मौखिक चर्चा नहीं की। **क्षमाशील दयानन्द के पास क्षमा की क्या कमी थी ? उनका तो नाम नामी ही दयानन्द था। दया करने का आनन्द तो दयावान् दयानन्द की जीवन पूंजी थी।**



सागर पार के देशों में ऋषि दयानन्द की धूम

अभी इन्हीं दिनों सागर पार के देशों से हमें इतिहास की पर्याप्त नई सामग्री मिली है। जो दस्तावेज़ (Documents) प्राप्त हुए हैं इनमें महर्षि दयानन्द जी के जीवन पर नया प्रकाश पड़ा। पं० लेखराम जी के पश्चात् कई एक ऋषि-भक्तों ने ऋषि जीवन की नई सामग्री की खोज के लिए अच्छा श्रम व तप किया, **परन्तु पं० लेखराम जी के पश्चात् कोई भी गुणी, विद्वान् ऋषि-जीवन के लिए असाधारण खोज नहीं कर सका। पहले से प्राप्त स्त्रातों को ही उलट-फेर करके नये-नये ग्रन्थ रचे जाते रहे।**

ईश्वर की असीम अनुकम्पा से रक्तसाक्षी पं० लेखराम जी के पश्चात् हमें दस्तावेज़ों की सबसे बड़ी खेप हाथ लगी है। यह सामग्री सागर पार के देशों से मिली है। अब इस पर हमारा मनन, चिन्तन व कार्य चल रहा है। आर्य जनता हमारे अगले ग्रन्थ की प्रतीक्षा करे। **हमारा एतद्विषयक अनुसन्धान आर्यसामाजिक साहित्य तथा हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक मील का पत्थर सिद्ध होगा, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।** यह दस्तावेज़ जर्मनी, फ्रांस, इंगलैण्ड, अमेरिका से तो मिले ही हैं, कुछ भारत से भी खोजे गये हैं।

इनमें अधिकांश सामग्री काशी शास्त्रार्थ की अगली दशाब्दी की है। कुछ आर्यसमाज स्थापना से पूर्व काल की है। कुछ महर्षि के बलिदान के समय तथा कुछ बलिदान के शीघ्र बाद की है। इन दस्तावेज़ों में जो कुछ कहा गया है वह ठीक समय पर आर्य जनता तथा इतिहास प्रेमियों के सामने लाया जायेगा। अभी तो बानगी के रूप में दो-तीन दस्तावेज़ों का सारांश ही यहाँ दिया जायेगा।

चाँदापुर शास्त्रार्थ—भारत सरकार के रिकार्ड में चाँदापुर शास्त्रार्थ की चर्चा मिली है। मार्च सन् १८७७ में हुए इस शास्त्रार्थ में देवबन्द मदरसा के सबसे बड़े मौलाना मुहम्मद कासिम जी तथा कई गोरे व देसी पादरियों ने भाग लिया था। इनमें से किसी का नामोल्लेख सरकार की

रिपोर्ट में नहीं है। आर्यसमाजों की संख्या तब आठ-दस से अधिक नहीं थी तथापि इस रिपोर्ट में महर्षि दयानन्द की संक्षिप्त चर्चा का अपना ही महत्त्व है। इसमें लिखा है—"............in which Pandit Dayanand Saraswati took a prominent part." अर्थात् इसमें पं० दयानन्द जी सरस्वती ने मुख्य रूप से भाग लिया। महर्षि के प्रति जनता की श्रद्धा, जनता पर उनके प्रभाव, उनके तप, तेज, संयम व साधना के कारण शासन ने उनके व्यक्तित्व का लोहा माना। **ऋषि के पास साधना की सम्पदा थी। साधन थे ही कहाँ?**

एक बिशप का पत्र—उस युग में प्रत्येक गोरे का बड़ा रोब था। गोरे पादरियों की भी शासन में बहुत चलती थी। उस समय के पंजाब के गोरे बिशप का ऐतिहासिक महत्त्व का एक पत्र मिला है। गोरे पादरियों को भारी भीड़ सुना करती थी। अब जब महर्षि कार्यक्षेत्र में उतर आये तो गोरे काले सब पादरियों की सभायें फीकी पड़ने लगीं। पंजाब का बिशप इस बात को स्वीकार करता है कि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती के आगमन के कारण अब भीड़ उसकी सभाओं में नहीं उमड़ती।

वैचारिक क्रान्ति—यह कोई साधारण क्रान्ति नहीं थी। सनातन धर्म के एक विद्वान् नेता पं० गंगाप्रसाद शास्त्री दिल्ली ने भी अपनी एक पुस्तक में इसी प्रकार की एक चर्चा की है। महाराष्ट्र का संस्कृतज्ञ विद्वान् पादरी नीलकण्ठ शास्त्री काशी, प्रयाग, मथुरा आदि तीर्थों में हिन्दुओं को धर्मच्युत करता फिरता था। उसे कोई रोकने वाला नहीं था। इसी पादरी ने महाराजा रणजीतसिंह के पुत्र (महाराजा दलीपसिंह) को ईसाई बनाया था। पं० गंगाप्रसाद जी ने लिखा है कि नीलकण्ठ पादरी महर्षि दयानन्द के सामने खड़ा न हो सका। वह भाग खड़ा हुआ। यह एक वैचारिक क्रान्ति थी।

न्यूयार्क के 'सण्डे मैगज़ीन' का ऐतिहासिक लेख

महर्षि दयानन्द जी महाराज जब रुड़की, दिल्ली, जयपुर, अजमेर, मसूदा होते हुए जयपुर से रेवाड़ी पधारे। उन दिनों उनके धर्मप्रचार तथा जनजागरण अभियान ने गोरे ईसाई शासकों का ध्यान खींचा। इन्होंने ऋषि

की गतिविधियों का सूक्ष्म अध्ययन किया। उन दिनों प्रयाग से एक अंग्रेज़ी पत्र The Tribune (दी ट्रिब्यून) छपा करता था। उस पत्र में आर्य-समाजोदय पर एक पठनीय व विस्तृत लेख छपा था। यह लेख एक पत्र के रूप में था। उस पत्र में आर्यसमाजोदय को "one of the most remarkable religious movements of the century" अर्थात् **'शताब्दी के सर्वाधिक उल्लेखनीय आन्दोलनों में से एक' घोषित किया गया था।** तब हिन्दू समाज में तो कोई ऋषि के चुम्बकीय व्यक्तित्व तथा सिंह गर्जना के दूरगामी प्रभाव व परिणाम का अनुमान न लगा सका।

उस समय न्यूयार्क से छपने वाले 'सण्डे मैगज़ीन' ने अपने सम्पादकीय 'The Martin Luther of India' (भारत का मार्टिन लूथर) में भविष्य के गर्भ में छिपी अघटित घटनाओं को सजीव भाषा में चित्रित कर दिया।

वैसे इससे पहले भी देश-विदेश के कई लेखकों ने ऋषि की कार्यशैली तथा विचारधारा पर पक्ष तथा विपक्ष में तत्कालीन पत्रों में अपनी प्रतिक्रियायें दीं। उन सबका अपना-अपना महत्त्व है **तथापि हमारा यह मत है कि दिसम्बर सन् १८७८ तक स्वामी दयानन्द जी महाराज पर छपे लेखों में इतिहास की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण यही लेख है।** हम इस लेख की कुछ मुख्य-मुख्य बातें आगे देते हैं[१]—

१. सोलहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में यूरोप की सुधार की लहर के जो कारण थे उन्नीसवीं शताब्दी में भारत के सुधार आन्दोलन के भी वही कारण थे।

२. स्वामी दयानन्द सरस्वती दूसरे सुधारकों के समान कोई नवीन मत पंथ की स्थापना करना नहीं चाहते। आप स्वदेश वासियों को शुद्ध पवित्र वैदिकधर्म की ओर ले जाना चाहते हैं। आप वैदिक आस्तिकवाद (एक ईश की ही उपासना हो) का सन्देश दे रहे हैं।

३. पंजाब में जहाँ कहीं स्वामी दयानन्द जाते हैं, **वहाँ-वहाँ आपके बलिष्ठ सुडौल शरीर, तेजस्वी मुखमण्डल, आपके विद्वत्तापूर्ण**

---

१. द्रष्टव्य, 'Sunday Magazine' New York, July to December, 1878.

व्याख्यानों, आपकी सिंहगर्जना, आपकी वाग्मिता तथा तीक्ष्ण तर्क से सब प्रकार का विरोध धूलि धूसरित हो रहा है।

४. देशवासी अब सजग होकर उठ खड़े हुए हैं। उनका कहना है कि अब हम अविद्या-अन्धकार में नहीं जी सकते। अब हम इसका संहार करके ही रहेंगे। **अब हम अपने लिए आप सोचेंगे और जो करना है स्वयं करेंगे।** हम एक लम्बे समय से—शताब्दियों से चले आ रहे अघ अज्ञान व कुरीतियों का निवारण करके अपने आर्य पूर्वजों के सद्ज्ञान पावन के प्रकाश से संसार को आलोकित करेंगे।

५. लाहौर का आर्यसमाज अब सब समाजों के लिये केन्द्रीय अथवा प्रधान आर्यसमाज समझा जाता है। **इसकी सदस्य संख्या चार सौ तक पहुँच गई है।**

६. इस पत्र के अनुसार उस समय समाजों की संख्या ४७ तक हो गई थी। [पं० लेखराम जी ने 'कुल्लियाते आर्य मुसाफ़िर' में प्रयाग के पायोनीर (PIONEER) पत्र में छपे एक लेख का अवतरण दिया है। उसमें यह संख्या ५० बताई गई है।] **ऋषि दयानन्द को उपर्युक्त लेख में दक्षिण भारत में जन्मा एक संन्यासी बताया गया है, परन्तु यह भी लिखा है कि उनके जन्म-क्षेत्र के बारे निश्चित रूप में कुछ नहीं कहा जा सकता।** स्वामी दयानन्द जी एक ओजस्वी वक्ता हैं, यह भी लिखा है।

७. वे ऋषि अन्य साधुओं के सदृश किसी जादुई शक्ति अथवा चमत्कार दिखाने का दावा नहीं करते तथापि यह निश्चित है कि इन तीन वर्षों में आपने असाधारण रूप से बहुत बड़ी संख्या में देशवासियों को अपना अनुयायी बना लिया है। इनमें कई उच्च कोटि के विद्वान् प्रभावशाली व प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं।

८ जो कुछ शाक्य मुनि गौतम बुद्ध ने बुद्ध मत के लिये किया वही कुछ यह विलक्षण महात्मा वैदिक धर्म के लिए कर रहा है। [लेखक ने यहाँ 'ब्राह्मण मत' शब्द का प्रयोग किया है]। **यह संन्यासी विशुद्ध सरल एकेश्वरवाद का प्रचार करता है। इसका कहना है कि ईश्वर**

एक ही है। उसके गुणवाचक अनेक नाम हैं। पौराणिकों के अनेक देवी देवता तथा मूर्त्तियाँ ईश्वर के भ्रष्ट व प्रदूषित अभिनेता हैं। भ्रष्ट पुरोहित वर्ग ने समाज को प्रतिमा-पूजक व अन्धविश्वासी बना रखा है।

९. मुम्बई आर्यसमाज की स्थापना के समय घोषित किये गये नियमों की श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा की गई व्याख्या भी इस लेख में दी गई हैं।

१०. सायण तथा उसके पिछलगू पश्चिमी वेदभाष्यकारों की चर्चा करते हुए बताया गया है कि इनके द्वारा किया गया किसी भी मन्त्र का अर्थ एक-दूसरे के किये गये अर्थों से नहीं मिलता। मूल मन्त्र के भाव से भी इनके किये अर्थ इतने ही भिन्न व दूर हैं।

११. **सबसे महत्वपूर्ण बात इस लेख में यह कही गई है कि अभी तक देश का एक भी पण्डित वेदमन्त्र के प्रमाण से मूर्त्तिपूजा को सिद्ध करने की स्वामी दयानन्द की चुनौती को स्वीकार नहीं कर सका। स्वामी जी से इस विषय में शास्त्रार्थ करने का किसी में भी साहस नहीं है।**

१२. स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य ने सत्यान्वेषण की भावना को जगा दिया है। निश्चय ही इससे सत्य की खोज को प्रोत्साहन और बल प्राप्त होगा।

१३. वेद के सद्ज्ञान के प्रचार का यह परिणाम अवश्य सामने आयेगा ही कि हिन्दुओं का मन व मस्तिष्क जो एक दीर्घकाल से अन्धविश्वास की बेड़ियों में बंधा पड़ा है, वे इन बन्धनों से मुक्त होंगे। भारत में डेरा डाले पूर्वाग्रहों से हिन्दू समाज को छुटकारा मिलकर रहेगा।

१४. लेख की समाप्ति पर **लेखक लिखता है कि ऐसा लगता है कि शासकों के संरक्षण व सहयोग के बिना ही आर्यसमाज फूले फलेगा। स्वामी दयानन्द का नाम नामी विश्व के महानतम सुधारकों में स्थान पायेगा, इसमें किंचित् मात्र भी शंका नहीं है।**[१]

१. द्रष्टव्य, 'Sunday Magazine' New York, Vol. IV, July to December, 1878.

महापुरुषों की दृष्टि में महर्षि दयानन्द

◆ स्वामी दयानन्द की सबसे बड़ी देन यह थी कि उसने देश को दीनता व हीनता की दल-दल में गिरने से बचाया। वास्तव में उसी ने भारतीय स्वाधीनता की नींव रखी।

—लौहपुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल

◆ ऋषि दयानन्द जाज्वल्यमान नक्षत्र थे जो भारतीय आकाश पर अपनी अलौकिक आभा से चमके और गहरी निद्रा में सोये हुए भारत को जाग्रत किया।

—लोकमान्य तिलक

◆ महर्षि दयानन्द ने पददलित भारत का पुनरुत्थान किया तथा राष्ट्र को नवजीवन का सन्देश दिया। उन्होंने सामाजिक क्रान्ति की एवं अंधश्रद्धा को दूर करने का प्रयत्न किया और राष्ट्र का निर्माण किया।

—पूर्व प्रधानमंत्री श्री मोरार जी देसाई

◆ स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं। मैंने संसार में केवल उन्हीं को गुरु माना है। वह मेरे धर्म के पिता हैं और आर्यसमाज मेरी धर्म की माता है। इन दोनों की गोद में मैं पला। मुझे इस बात का गर्व है कि मेरे गुरु ने मुझे स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करना, बोलना और कर्त्तव्यपालन करना सिखाया तथा मेरी माता ने मुझे एक संस्था में बद्ध होकर नियमानुवर्तिता का पाठ दिया।

—पंजाब केसरी लाला लाजपतराय

◆ जब भारत के उत्थान का इतिहास लिखा जायेगा तो इस नंगे फ़कीर दयानन्द सरस्वती को उच्चासन पर बिठाया जायेगा।

—इतिहासकार सर यदुनाथ सरकार

◆ स्वामी दयानन्द के उच्च व्यक्तित्व और चरित्र के विषय में निस्सन्देह सर्वत्र प्रशंसा की जा सकती है। वे सर्वथा पवित्र तथा अपने सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करने वाले महानुभाव थे। वे सत्य के अत्यधिक प्रेमी थे।

—रेवरेण्ड सी० एफ़० एण्ड्रूज़

◆ स्वामी दयानन्द ही पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने 'हिन्दुस्तान

हिन्दुस्तानियों के लिए' का नारा लगाया था।···आर्यसमाज के लिए मेरे हृदय में शुभ इच्छाएँ हैं और उस महान् पुरुष के लिए, जिसका आप आर्य आदर करते हैं, मेरे हृदय में सच्ची पूजा की भावना है।

—श्रीमती ऐनी बैसेण्ट

◆ स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुयायी उन्हें देवता-तुल्य जानते थे, और वे निस्सन्देह इसी योग्य थे। वे इतने विद्वान् और अच्छे मानव थे कि प्रत्येक धर्म के अनुयायियों के लिए सम्मान-पात्र थे। **उनके समान व्यक्ति समूचे भारत में इस समय कोई नहीं मिल सकता।**

—सर सैय्यद अहमद खाँ

◆ स्वामी दयानन्द सरस्वती राष्ट्रीय, सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से भारत का एकीकरण चाहते थे। भारतवासियों को राष्ट्रीयता के सूत्र में ग्रथित करने के लिए उन्होंने देश को विदेशी दासता से मुक्त कराना आवश्यक समझा था।···

—श्री रामानन्द चटर्जी (सम्पादक 'मॉडर्न रिव्यू')

◆ इसका श्रेय केवल स्वामी दयानन्द को ही है कि हिन्दू लोग आधी शताब्दी में हीं रूढ़िवाद और पौराणिक देवी-देवताओं की पूजा छोड़कर अत्यन्त शुद्ध एकेश्वरवाद को मानने लगे हैं।

—प्रिन्सिपल एस० के० रुद्र

◆ स्वामी दयानन्द भारतवर्ष के उन धार्मिक महापुरुषों में से एक हैं, जिनका गुणानुवाद करने में ही जीवन समाप्त हो सकता है।

—श्रीमती सरलादेवी चौधरानी

◆ महर्षि दयानन्द भारत-माता के उन प्रसिद्ध और उच्च आत्माओं में से थे, जिनका नाम संसार के इतिहास में सदैव चमकते हुए सितारों की तरह प्रकाशित रहेगा। वे भारत-माता के उन सपूतों में से हैं, जिनके व्यक्तित्व पर जितना भी अभिमान किया जाए थोड़ा है। नैपोलियन और सिकन्दर जैसे अनेक सम्राट् एवं विजेता संसार में हो चुके हैं, परन्तु स्वामी उन सब से बढ़कर थे।

—खदीजा बेगम एम० ए०



वैदिक पुस्तकालय

केसरगंज अजमेर

आवरण : श्रीमहालक्ष्मी, ९८२९६५१५०३
E-Mail : smcolour@gmail.com